प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-सघ,
वर्धा (म० प्र०)

(सशोधित सस्करण)
तीसरी बार : २०,०००
कुल छपी प्रतियॉ : ३०,०००
अगस्त, १९५५
मूल्य . छह आना

मुद्रक .
ओम् प्रकाश क
ज्ञानमण्डल य
बनारस ४८०

दुर्भाग्य से हमारे निजी, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में बड़ी गंदगी आ गयी है, जिससे देश की उन्नति में बड़ी बाधा पड़ रही है। आज सबसे बड़ी आवश्यकता इस गंदगी को दूर करने की है। सचाई और ईमानदारी का मार्ग सरल नहीं होता, किन्तु इसमें भी कोई संदेह नहीं कि बिना उस पर चले देश की स्थिति मे वास्तविक सुधार नही हो सकता।

जीवन के सभी व्यवहारों को शुद्ध बनाने पर जोर तो हमेशा से दिया जाता रहा है; लेकिन उसे आंदोलन का रूप मिला राऊ के सर्वोदय-सम्मेलन के बाद। तब से उस दिशा में प्रयत्न जारी है।

इस पुस्तक में व्यवहार-शुद्धि की पृष्ठ-भूमि तथा विचार-धारा स्पष्ट की गयी है। व्यवहार-शुद्धि-आन्दोलन की जानकारी भी दी गयी है।

आशा है, पाठकों के लिए यह पुस्तक लाभदायक सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

अनुक्रम

आमुख



व्यवहार-शुद्धि आंदोलन

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद, लोगों में सुराज्य की आशा का जागना स्वाभाविक था, परन्तु ज्यो-ज्यों समय बीतता गया, त्यों-त्यों परिणाम विपरीत दिखाई देने लगा। जनता में व्याकुलता बढ़ने लगी, अनेक प्रकार के दोष उभरते-से दीखने लगे। इनमें सबसे प्रमुख था भ्रष्टाचार, जो सब क्षेत्रो मे फैला हुआ था। स्वराज्य के पहले भी भ्रष्टाचार था, पर बाद मे वह तेजी से बढ़ने लगा। सज्जनों को वह ज्यादा खटकने लगा। स्वराज्य तो केवल राजनीतिक ही मिला था; पर केवल उतने से देश की दशा थोड़े ही बदलनेवाली थी! केवल धन-सम्पत्ति के बढ़ने मात्र से सुराज्य नहीं आ सकता। जब तक मनुष्य नहीं सुधरता, तब तक सुराज्य कहाँ और कैसा? लम्बे अरसे से हममें सामाजिक और नैतिक दोषो का प्रवेश कैसे हुआ और स्वराज्य मिलने के बाद भी वे कैसे बढ़ते गये, इसके कारणों की मीमांसा मे जाने की जरूरत नहीं है। इतना समझना काफी है कि वस्तुस्थिति बड़ी चिन्ताजनक हो उठी है।

शुद्धि के लिए अपरिग्रह की जरूरत थी

मेरे मन में एक विचार स्वराज्य मिलने के समय से चलता रहा कि बढ़ती हुई अनीति और भ्रष्टाचार को घटाने का तथा देश

को सदा के लिए सन्मार्ग दिखाने का जो एक रास्ता था, उसे स्वराज्य मिलने पर अपनाया जाता, विशेषकर बदले हुए जमाने में, तो अच्छा होता। उस विचार का यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक मानता हूँ।

स्वराज्य-प्राप्ति के प्रयत्न में जितने त्याग की आवश्यकता थी उससे कई गुने अधिक त्याग की आवश्यकता देश के पुनरुत्थान के लिए थी और है। त्याग के बिना नैतिक स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता और जीवन-व्यवहार में भी शुद्धि नहीं आ सकती, जो समाज-कल्याण के लिए जरूरी है। परन्तु स्वराज्य मिल जाने के बाद ऐसा कुछ दीख पड़ा कि बहुत से लोग, विशेषकर कांग्रेसजन, जिनके कि हाथ में सत्ता आयी, यह समझने लगे कि अब त्याग की वैसी जरूरत नहीं रही, भोग का मौका है, इसलिए स्वराज्य के फलस्वरूप जो कुछ शक्ति या अधिकार मिल रहा है, उसे अपनी ओर खींचने में बाधा नहीं है। इसका परिणाम पतन ही हो सकता था। प्रश्न यह है कि ऐसी दशा में आम जनता में त्याग की मात्रा कैसे बढ़े ? सद्ग्रन्थों में तथा साधु-सन्तों के द्वारा त्याग की महिमा हम पढ़ते-सुनते रहते हैं, तथापि आम जनता तो उसे अपनी कक्षा या बूते के बाहर की बात समझती है और यह मानती है कि वह संसार के झंझट से दूर रहनेवाले थोड़े से लोगों की ही चीज है। हम त्यागवृत्ति का आदर करें, परन्तु हमारे जीवन से उसका विशेष सम्बन्ध जोड़ने की जरूरत नहीं है। सामान्य जनता तो अपना मार्गदर्शन अपने समान संसार में रचे-पचे लोगों से ही पाने का प्रयत्न करती है। अपने आचरण के लिए वह वैसी ही वृत्तिवाले अपने से ऊँचे माने जानेवाले लोगों की ओर देखती है। "यद् यद्

ा-देखी वह चलने का प्रयत्न करती है। सत्ताधीश लोग ही श्रेष्ठ
ा जाते हैं, फिर वे राजसत्तावाले हो या धनसत्तावाले। नैतिक
ः से ऐसा मानना उचित तो नहीं है, परन्तु लोकमानस जैसा
गया है, उसे स्वीकार करके ही विचार करना होगा।

वहुत लम्बे समय तक अंग्रेज सत्ताधीशों की एक विशेष प्रणाली
ी। वे यहाँ थोड़ी-सी संख्या में थे। उन्हें करोड़ों लोगो पर रोव
लकर अपना राज्य कायम रखना था। वे अपना प्रभाव सामान्य
ाता पर शान-शौकत, ठाट-वाट, दरवार, प्रदर्शन आदि से डालने
प्रयत्न करते रहे। पर स्वराज्य के वाद उस पद्धति की आवश्यकता
ीं रही। भारतीय संस्कृति में भोग की अपेक्षा त्याग तथा अपरि-
ः को अधिक महत्त्व दिया गया है। वर्तमान आर्थिक विषमता का
कावला भी अपरिग्रह से किया जा सकता है, इसलिए स्वराज्य
लने पर अगर हमारे सत्ताधीश, विशेपकर ऊँचे पदो पर गये हुए
ा भर के हजार-पाँच सौ महानुभाव पुरानी पद्धति वदलकर अपरि-
ः-वृत्ति पर चलते, तो राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ नैतिक
रिवर्तन का दृष्टिकोण भी जनता के सामने आता, उसके सामने
ाग का उदाहरण रहने पर वह उन वड़ों का अनुकरण करती और
मझ लेती कि हमारे स्वराज्य में भी त्याग की आवश्यकता है।
ाजा कालस्य कारणम्', यह वात पुराने जमाने की अपेक्षा आज
इसगुना अधिक अर्थ-भरी है। अव हमारी सरकारों की सत्ता
ारे चूल्हे तक भी पहुँचती है, परन्तु देश की वढ़ती हुई विपन्ना-

वस्था में भी दिल्ली की तथा प्रांतों की राजधानियों की शान-शौकत और अमीरी रहन-सहन अंग्रेजी सत्ताधीशों की-सी रही। जनता के सामने त्याग का आदर्श नहीं रहा, जिसकी बदले हुए काल में बहुत-कुछ आवश्यकता थी। राजनैतिक परिवर्तन हुआ, परन्तु देश के कारोबार में बहुत कुछ पुरानी परम्परा ही चल रही है। लोग भोग की तथा धन संग्रह की तरफ ही झुके हुए हैं। वस्तुएँ अत्यन्त महँगी होने के कारण, ऊँचे आदर्श के अभाव में, भ्रष्टाचार की ओर बढ़ने मे किसीको संकोच नहीं रहा।

व्यवहार-शुद्धि आंदोलन का प्रारंभ

लड़ाई के समय से ही अनेक वस्तुओं पर कण्ट्रोल लगे हुए आ रहे थे। बाद में भी न्यूनाधिक परिमाण में उनकी आवश्यकता मानी गयी। अन्न का प्रश्न हल करने के प्रयत्न में कण्ट्रोल कुछ ज्यादा कड़े भी किये गये। कण्ट्रोलों के कारण भ्रष्टाचार भी बेशुमार बढ़ा। पाश्चात्य देशो में भी लड़ाई के समय तथा बाद में कण्ट्रोल थे, परन्तु वहाँ नागरिक कर्तव्य-बुद्धि जाग्रत रहने के कारण कण्ट्रोल तोड़ने की अपेक्षा उनके पालन की ओर ही जनता का अधिक झुकाव रहा। भारत में उससे उल्टा हुआ। यहाँ कुछ अपवाद छोड़कर व्यापारी तथा सामान्य जनता प्रायः इसी कोशिश में रही कि कण्ट्रोल के नियम कैसे तोड़े जायँ। जब भ्रष्टाचार का इतना बोलबाला है, तब स्वराज्य होते हुए भी समाज का कल्याण कैसे हो सकता है, इस विचार ने सज्जनों को चिन्तित कर दिया। जहाँ कहीं खानगी या सार्वजनिक रूप से, मुसाफिरी में या सभाओं आदि में थोड़े से भी व्यक्ति इकट्ठे होते, तो भ्रष्टाचार की चर्चा चलती, उसकी निंदा की जाती और दूसरों को दोष दिया जाता। जिस दोष की इतनी

व्यापक निंदा हो, वह समाज में इतने बड़े पैमाने पर वस्तुतः क्यों चलता रहे? परन्तु निंदा करनेवाले भी उन दोषों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अछूते थोड़े ही रहते थे। बहुतेरे जान-बूझकर या विवश होकर भ्रष्टाचार के सहायक बनते थे। केवल निंदा करने से किसी दोष का निराकरण नहीं हो सकता। दोष तो न करने से ही दूर हो सकता है। इतने व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार के चलते हुए भी चुपचाप बैठे रहना बड़ा दोष है। मनुष्य का पुरुषार्थ इसीमें है कि कोई साथ न दे, तो भी वह अकेला ही दुष्टता का मुकाबला करे। परन्तु प्रायः अकेला आदमी उतना साहस नहीं कर सकता। अकेले आदमी का प्रयास सफल होना भी मुश्किल होता है। जैसे गुण में बल और शक्ति होती है, वैसे ही जन-सहारा पाकर दोष भी व्यापक बन जाता है। सामूहिक दोष के आगे व्यक्तिगत गुण का टिकना मुश्किल हो जाता है, इसलिए संगठन की आवश्यकता होती है। वैसा व्यवस्थित प्रयत्न करने का विचार कुछ सज्जनों के दिल में उस समय आया।

व्यवहार-शुद्धि-मंडल, बम्बई की स्थापना

शायद पहले-पहल श्री गुलजारीलालजी नंदा ने यह सुझाया कि लोगों से प्रतिज्ञा-पत्रक भरवाये जायँ कि वे अमुक-अमुक प्रकार का भ्रष्टाचार नहीं करेंगे। सन् १९४९ में राऊ के सर्वोदय-समाज के सम्मेलन मे उन्होने अपना यह विचार रखा और चाहा कि सम्मेलन ऐसा आन्दोलन चलाये। उनका विचार पसन्द तो आया, परन्तु सर्वोदय-समाज कोई संगठित मंडल नहीं था कि वह खुद इस काम को उठाता और आज के जैसा 'सर्व-सेवा-संघ' भी उस समय नहीं बना था। फिर भी बम्बई के श्रीनाथजी महाराज के दिल में

आया कि ऐसा कुछ काम होना चाहिए। राऊ-सम्मेलन के थोड़े ही समय बाद उन्होंने बम्बई में 'व्यवहार-शुद्धि मंडल' की स्थापना की।

श्रीनाथजी महाराज के शब्दों मे 'व्यवहार-शुद्धि मंडल' का उद्देश्य और उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है :

व्यवहार-शुद्धि की पृष्ठभूमि

"मानव-समाज का स्वास्थ्य, उत्कर्ष और उन्नति मनुष्यों के सद्‌गुणों पर अवलम्बित है। सत्य, प्रामाणिकता, उदारता, प्रेम, मित्रता, परस्पर योग्य सहयोग और सहानुभूति के बिना मानवीय व्यवहार का चलना और समाज का ठीक से टिके रहना सम्भव नहीं है। अगर मनुष्य को मनुष्य के नाते जीना है, तो उसे मानव-धर्म को अंगीकार करना ही चाहिए। ये सब बातें सही और स्पष्ट होते हुए भी हम आज उन्हें भूल गये हैं। आज समाज में अनेक प्रकार के असत्य और दुर्व्यवहार खुल्लमखुल्ला चल रहे हैं। केवल धन ही सबकी आराध्य वस्तु बन गयी है। धन प्राप्त करने में न्याय-अन्याय, नीति-अनीति आदि का विचार नहीं किया जाता। मानवीय जीवन की दृष्टि से यह दशा अत्यन्त शोचनीय है।

"किसी भी देश की या समाज की श्रेष्ठता उस देश या समाज के लोगों की संस्कारिता से जानी जाती है। उच्च और उदात्त नैतिक निष्ठा के बिना इस तरह की संस्कारिता और सभ्यता प्राप्त नहीं हो सकती। जिस देश के लोग एक-दूसरे के लिए, स्वार्थरहित बुद्धि से कष्ट सहन करना चाहिए ऐसा समझकर तदनुसार आचरण करते हैं, उस समाज की नैतिकता सदा उज्ज्वल रहती है। पर हम लोग तो आज अपने देश के भाइयों का शोषण कर समाज-द्रोह कर रहे हैं। कोई धन-तृष्णा से, तो कोई मोह से, कोई सत्ता के मद से, तो कोई जीविका चलाने की अडचन से, वैसा कर रहे हैं। हमारा कदम विनाश की दिशा में बढ़ रहा है।

"हम सब जानते हैं कि आज सर्व-साधारण जनता कितनी तकलीफ और आपत्ति मे अपने दिन बिता रही है। जीवन की आवश्यक वस्तुओं की महँगा मध्यम-वर्ग से लेकर गरीब तक सबको बहुत तग कर रही है। अनेक प्रकार के सासारिक सकटो, व्याधियों, आपसी कलह और द्वेष, आज की और भविष्य की चिंताओं आदि नाना कष्टों से जनता त्रस्त है। समाज की सस्कारिता, सभ्यता और नैतिकता खतरे में है। इस परिस्थिति के अनेक कारण होगे। फिर भी हमे यह खेदपूर्वक कबूल करना होगा कि इसमें हमारी दुष्ट बुद्धि भी एक बडा कारण है। जब तक वह नहीं बदलेगी, तब तक केवल सरकारी आर्डिनेन्स, नियन्त्रण या दंड-नीति विशेष परिवर्तन नहीं कर सकती। ऐसी दशा में भी मेरी और मेरे मित्रों की मनुष्य-मात्र में रहनेवाले दैवी अश पर श्रद्धा है। अगर वह अश जाग्रत हो, हम समझ ले कि मानवीय जीवन स्वार्थ के लिए नहीं धर्म के लिए है, एक-दूसरे के लिए कष्ट सहन करना भी धर्म का एक अग है और इस प्रकार हमारा व्यवहार होने लगे, तो हमारा जीवन शुद्ध होगा और हम आज के पाप-चक्र में से बच सकेंगे। इस श्रद्धा से हमने अपनी और दूसरों की जीवन-शुद्धि के हेतु से ता० २९-५-१९४९ से 'व्यवहार-शुद्धि-मण्डल' की स्थापना की है।

"भारत स्वतन्त्र हो गया है। उसके हरएक दोष की जवाबदारी अब उसी पर है। उसे दुनिया के स्वतन्त्र और सुख-संपन्न राष्ट्रों की बराबरी का दर्जा प्राप्त करा देना, उसे वैभवशाली बनाना हम सब भारतीयों का कर्तव्य है। वह फर्ज अदा करने के प्रयत्न में हमको पहले इस चलते हुए व्यावसायिक पाप-चक्र को नष्ट करना चाहिए। इसका एक उपाय यह है कि हरएक व्यक्ति को अपने-अपने व्यवहार में शुद्धि लानी चाहिए। यही व्यवहार-शुद्धि-मण्डल का प्रमुख हेतु है। इसीसे पाप-चक्र की गति धीमी होते-होते हम सबके सामुदायिक प्रयत्न से वह एक दिन नष्ट हो जायगी। हमारा हेतु केवल व्यापारिक व्यवहार मे ही शुद्धि लाने का न होकर जीवन के हरएक क्षेत्र मे, शरीर, बुद्धि और मन के द्वारा होनेवाली प्रत्येक क्रिया मे, वैयक्तिक, कौटुबिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि बातों

के विचारो मे, भावनाओं मे और कर्मो में शुद्धि लाना है। सयम, विवेक और पुरुषार्थ की वृद्धि करते रहकर अपना जीवन निर्मल, निर्दोष और व्यवस्थित हो और सब परमात्मा द्वारा मानव के लिए नियोजित किये हुए शुभ और मगल आदर्श की ओर सदा बढते रहें, यह उच्च हेतु व्यवहार-शुद्धि के प्रयत्न के पीछे है। इसीको हम जीवन-शुद्धि कहते है, जिसके लिए व्यवहार शुद्धि की आवश्यकता है।

मण्डल के सदस्यों के प्रकार

"ऊपर के वक्तव्य से, मण्डल स्थापित करने के पीछे की मनोभूमिका समझ में आ सकेगी। इस विचार के अनुरूप सजग होकर प्रयत्नशील होने के लिए हमने दो प्रकार के प्रतिज्ञा-पत्रक बनाये है। नम्बर १ वाला प्रतिज्ञापत्र सब प्रकार का दुर्व्यवहार छोड देनेवालों के लिए है। नम्बर २ वाला क्रमश. एक-एक, दो दो दुर्व्यवहार छोडते हुए अन्त मे नम्बर १ पत्रक का पात्र होने की इच्छा रखनेवाले प्रयत्नशील सदस्य के लिए है। न० १ वाले को सदस्य और नम्बर २ वाले को सहायक सदस्य नाम दिया गया है। पत्रक भरने के लिए कोई आग्रह नहीं किया जाता अथवा कोई लालच नही दिखाया जाता। खुद की परिस्थिति और शक्ति का विचार करके पत्रक भरना चाहिए। भरने के बाद दृढता से उसके अनुसार चलने का प्रयत्न हो। इतने पर भी अगर किसीको दीख पड़े कि वह अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चल नहीं सकता, तो कोई सकोच या ढोंग न करते हुए उसे अपनी प्रतिज्ञा वापस ले लेनी चाहिए। क्योंकि एकाध सदस्य के असत्य से भी पूरे मण्डल के बारे मे शका खडी हो सकती है, समाज मे एक-दूसरे के प्रति विश्वास घटने लगता है और कुल मिलाकर सामुदायिक कार्य की हानि होती है। इसलिए कोई भी दम्भ का आश्रय न ले, इस दृष्टि से प्रतिज्ञा-पत्रक के बारे मे यह सावधानी और नीति रखी गयी है। इसी कारण मण्डल के सदस्यों की सख्या विशेष रूप से बढ नहीं

पायी। सदस्य न बनते हुए भी जो सज्जन मंडल से सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध रखते हैं, वे मंडल के हितैषी समझे जाते हैं।"

श्रीनाथजी महाराज के वक्तव्य का उपर्युक्त कुछ लम्बा-सा अंश यहाँ इसलिए उद्धृत किया गया है कि उस समय की दशा और शुद्धि का आन्दोलन चलाने का उद्देश्य तथा देश का कल्याण करने के लिए कौन-कौन से सद्गुणो के विकास की आवश्यकता है और उसके आड़े आनेवाले कौन से दोष हममें हैं, इसका ठीक भान हो जाय।

वर्धा के प्रयत्न

इसी सम्बन्ध मे दूसरा प्रयत्न श्री किशोरलालभाई मशरूवाला की प्रेरणा से वर्धा मे हुआ। उनका भी जोर इस बात पर रहा कि जब व्यापक रूप मे फैले हुए भ्रष्टाचार की दशा में अकेला आदमी अपने को उससे बचाने में या उसको रोकने में असमर्थ पाता है, तो समान उद्देश्य रखनेवाले सज्जन इकट्ठे होकर एक-दूसरे की मदद करें और संगठित शक्ति से उसका मुकाबला करने का प्रयत्न करें। इस हेतु से वर्धा मे एक 'शुद्ध व्यवहार समिति' की स्थापना सन् १९५० मे हुई। उसके कार्यक्रम का स्वरूप इस प्रकार रहा:

इस आन्दोलन मे सबसे बड़े महत्त्व की बात यह है कि जो इसमें शामिल होना चाहे, वे पहले अपने खुद के व्यवहार में शुद्धि

लायें। खुद काम शुरू करके जो उनके पहचान के हों और जिनके वचन-पालन पर वे भरोसा रख सकते हों, उनको अपने साथ जुटावें। अगर कोई बनी-बनायी संस्था इस काम के लायक हो और वह भार उठावे तो उसकी मार्फत आन्दोलन चलाया जाय, अथवा शुद्ध व्यवहार मे शामिल होनेवालो की नयी समिति बनायी जाय। वे इकट्ठे होकर सोचें कि कौनसी प्रतिज्ञा उनके सदस्यों के लिए उपयुक्त हो सकती है। प्रतिज्ञाओं में भिन्नता रह सकती है, पर वह इतनी कमजोर न हो कि आखिर बेकार हो जाय। प्रतिज्ञा लेनेवाले अपना व्यवहार भरसक शुद्धि से करने लगें। जहाँ अड़चन खड़ी हो, वहाँ वे इकट्ठा होकर सोचें कि कठिनाई में से रास्ता कैसे निकाला जाय। इस काम में पड़नेवालों को खुद सोच-विचारकर आगे बढ़ना चाहिए। कहीं दूर से या दूसरों से सूचना मिलने के लिए रुकना नहीं चाहिए। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि इस काम का संगठन स्थानीय ही हो सकता है, ताकि एक-दूसरे की मदद का सबको लाभ मिले। दूर-दूर के सदस्यों का सगठन करने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा।

प्रतिज्ञा के नमूने

व्यवहार शुद्धि मंडल, बम्बई।

सदस्य

आज चालू व्यापारी व्यवहार में रिश्वत, कालाबाजार, टैक्स की चोरी, मिलावट वगैरह बुराइयाँ बड़े पैमाने पर फैली हुई हैं। उन्हें दूर करने के लिए मैं .. ..व्यवहार-शुद्धि-मंडल का सदस्य बनता हूँ। मैं जो कुछ व्यवहार करूँगा, उसमें ऊपर बतायी हुई किसी भी बुराई में भाग नहीं लूँगा। ऐसा आचरण करने में जो कोई कठिनाई आयेगी, उसे दूर करने के लिए मुझे यदि कोई उपाय न सूझे, तो मैं अपनी असुविधा मण्डल के सामने रखूँगा। मंडल जो सलाह या आज्ञा देगा, उसे व्यवहार में लाने के लिए मैं बँधा हूँ।

सही

पूरा नाम, पेशा, स्थान
ता०.. ... .

सहायक सदस्य

आज चालू व्यापारी व्यवहार में रिश्वत, कालाबाजार, मिलावट वगैरह अनेक प्रकार की बुराइयाँ बड़े पैमाने पर फैली हुई है। उन्हें दूर करने के वास्ते मैं... .... व्यवहार-शुद्धि मंडल का सहायक सदस्य बनता हूँ। नीचे लिखे जिस दुर्व्यवहार के सामने मेरी सही है, वह दुर्व्यवहार मैं नहीं करूँगा और बाकी के सब दुर्व्यवहारों से बचने का सतत प्रयत्न करता रहूँगा। इस प्रयत्न में मैं व्यवहार-शुद्धि-मंडल की सलाह और आज्ञा के अनुसार चलने के लिए बँधा हूँ।

रिश्वत
कालाबाजार
मिलावट

अनाज का कालाबाजार
कपड़े का कालाबाजार
खोटे माप-तौल
टैक्स की चोरी

सही

पूरा नाम, पेशा, स्थान
ता०.........

शुद्ध व्यवहार समिति वर्धा।

मैं ....

(१) जिस चीज की बाजार में कमी हो, उसे जरूरत से ज्यादा नहीं खरीदूँगा और कृत्रिम कमी पैदा करनेवाली प्रवृत्तियों में शामिल नहीं होऊँगा। (२) जिन चीजों के भाव सरकार द्वारा नियत किये गये हों, वे चीजें नियत भाव से ही खरीदने की कोशिश रहेगी, अर्थात् कालेबाजार से नहीं खरीदूँगा। (३) सुविधा, आराम या सामाजिक कार्यों के लिए कानून को टालकर या गुप्त रीति से चीजें नहीं खरीदूँगा। (४) मैं किसीको रिश्वत नहीं दूँगा। (५) मैं अपना जीवन शुद्धता से और न्याय-नीति से बिताने की कोशिश करता रहूँगा और ज्यादा से ज्यादा लोगों को शुद्ध व्यवहारी बनाने की कोशिश करूँगा।

सही

पूरा नाम, पेशा, स्थान
ता०.........

लगते हैं तब उसमें रहे हुए दोष का स्वरूप जानने लगते हैं और उसे हटाने की कोशिश करते हैं। इस आन्दोलन ने कई व्यक्तियों को इस तरह विचारप्रवण किया है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि जिन्होंने अंतःशोधन कर अपनी शुद्धि करने की कोशिश की है। ऐसे अनेक पत्र दफ्तर में आते रहे। उदाहरण के तौर पर नीचे एक पत्र का सारांश दिया जाता है, जो हमारे लिए प्रेरणादायी है। अगर हम इस प्रकार का विचार करते रहें, तो अनेक अशुद्धियों से बच सकते हैं :

"जब से मै 'हरिजन' में शुद्ध-व्यवहार आन्दोलन के लेख पढने लगा हूँ, तब से मैं अपने जीवन में ईमानदारी से चलने की कोशिश कर रहा हूँ। कभी कामयाव हुआ हूँ, कभी निराश भी। इसके पहले मैं अपने राशन-कार्ड पर से, जो लोग गैरहाजिर थे, उनका राशन ले लिया करता था। अब मैंने वैसा न करने का निश्चय किया है। चार पाँच माह हो गये, मेरा ठीक निभ रहा है और मुझे विश्वास है कि ऐसा ही निभता रहेगा। इसके पहले मैं अपने निजी काम के लिए अपने मालिक के दफ्तर के टेलीफोन, स्टेशनरी और टाइपराइटर का छूट से उपयोग करता रहा, पर अब मुझे दीख गया है कि यह गैरवाजिब है। अब मैने वह वन्द कर दिया है। दफ्तर के समय के बाद भी मै अपने पढने-लिखने के लिए दफ्तर की विजली की रोशनी का उपयोग करता था। वह भी मुझे गैरवाजिब मालूम हुआ। तब से मैंने अपने लिए अलग वत्ती न लगाकर, जहाँ दूसरे काम के लिए बत्ती जलती रहती है, वहाँ जाकर मै अपने पढने-लिखने का काम कर लिया करता हूँ। इसके पहले छुट्टी माँगने के लिए सच्चे कारण देने से छुट्टी मिलने की सम्भावना न समझकर रिश्तेदारों की वीमारी आदि झूठे कारण वताकर छुट्टी लिया करता था। दफ्तर के वहुत से लोग प्राय. ऐसा ही किया करते हैं और अधिकारी लोग भी जान-

बूझकर वैसा चलने देते है और उसमें दोष नहीं मानते। अगर सच्चा कारण बताया जाय तो छुट्टी मिलती भी नहीं। मेरे दिल में जाग्रति होने के बाद जब एक बार छुट्टी की आवश्यकता हुई, तो मैंने सच्चा-सच्चा कारण लिख दिया, जिससे छुट्टी की दरखास्त नामजूर हो गयी। फिर भी मेरा विचार तो यही है कि भविष्य में सच्चा कारण बताकर ही छुट्टी मॉगता रहूँगा। सचाई के मार्ग मे ऐसी अडचनें काफी आती है और कभी-कभी जी घबड़ाता भी है। इस भरोसे पर हूँ कि ईश्वर बल देगा।"

इसी भाई ने बाद में लिखा कि जब अधिकारियों का मुझ पर विश्वास बढ़ गया, तब जिस कारण पर पहले छुट्टी नहीं मिली थी, उसी कारण पर बाद मे मिल गयी। पाठक देखेंगे कि उक्त भाई के जीवन में जो बीती, वही हालत बहुतो की रहती है। बिना कारण ही हमसे बहुत से असत्य होते रहते हैं। पर हम सोचते ही नहीं, अथवा चूँकि बहुत से वैसा करते हैं, इसलिए हमें उसमें दोष ही नहीं दीखता। अगर हम ऊपर लिखे अनुसार अंतर्निरीक्षण कर अपनी शुद्धि का प्रयत्न करते रहे, तो बहुत से पापो से बच सकते हैं।

वर्तमान स्थिति और व्यवहार शुद्धि

अब बहुत से कण्ट्रोल हट गये हैं। कुछ ढीले भी पड़ गये हैं। कण्ट्रोलो को लेकर जो कुछ अशुद्धि थी, उसके लिए अब विशेष कारण नहीं रहा और वैसी शिकायत भी अब कम है। तथापि सर्वसाधारण जीवन की जो अशुद्धि थी, वह तो ज्यों-की-त्यों बनी है। इस व्यापक अशुद्धि को हटाये बिना समाज का कल्याण सम्भव नहीं है। सुराज्य का होना मनुष्य के नैतिक सुधार पर ही अवलंबित है। व्यवहार-

शुद्धि का लगातार प्रयत्न होते रहने की आवश्यकता अब भी उतनी ही है। इसलिए व्यवहार शुद्धि का आन्दोलन चलाने में जो प्रश्न खड़े हुए और जो अनुभव आये, वे संक्षेप मे इस पुस्तिका में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया गया है। हमारे सत्तावीश तथा सब दलवाले लोग शुद्ध व्यवहार पर जोर दे रहे हैं। आशा की जा सकती है कि इस पुस्तिका द्वारा भी यह विषय जनता के सामने रहने से शुद्धि के प्रयत्न में मदद मिलेगी। इस पुस्तिका में सिद्धान्त-निरूपण की अपेक्षा व्यावहारिक दृष्टिकोण पर ज्यादा जोर दिया गया है। शुद्धि के सब प्रसंगों का वर्णन करना तो असमव है, परन्तु जीवन के अनेक प्रसंगो में, जो अशुद्धि दीख पडती है, उनमे से कुछ का केवल नमूने के तौर पर इस पुस्तिका में जिक्र किया गया है।

सर्व-सेवा-संघ का प्रस्ताव

सर्व-सेवा-संघ ने ता० ७-७-'५१ को व्यवहार-शुद्धि के बारे में नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया था :

"देश में वढ़ता हुआ भ्रष्टाचार कैसे रोका जाय, इसके बारे में 'सर्व-सेवा-संघ' की ता० १५-७-१९५० की बैठक में चर्चा हुई शिवरामपल्ली के सर्वोदय-समाज के सम्मेलन में भी शुद्ध-व्यवहा का आन्दोलन कैसे चलाया जाय, इस पर विचार हुआ था। बम्वई वर्धा आदि कुछ स्थानों में यह आन्दोलन शुरू हो गया है। 'सर्व-सेव संघ' इस आन्दोलन को पसन्द करता है और देश की जनता से विशेषकर सब रचनात्मक कार्यकर्ताओं से और सर्वोदय-समाज सेवकों से अनुरोध करता है कि वे खुद शुद्ध व्यवहारी बनकर दूस

को भी व्यक्तिगत तथा सामुदायिक सहकारी रूप से शुद्ध व्यवहार अपनाने की प्रेरणा दें।

"सर्व सेवा-संघ यह भी महसूस करता है कि इस काम में सरकारी कर्मचारियों के सहयोग के विना सफलता मिलना संभव नहीं है। सामान्य जनता की शुद्धि वहुत-कुछ अंश मे सरकारी कर्मचारियो की शुद्धि पर अवलंबित है। आज की विषम परिस्थिति में तो सरकारी कर्मचारियो का शुद्धिकरण अपना खास महत्त्व रखता है। इसलिए राज्यों के मन्त्री-मण्डलो का फर्ज है कि वे अपने कर्मचारियों के शुद्धिकरण की ओर विशेष ध्यान दें।"



पहला अध्याय

अशुद्ध-व्यवहार की जड़

एक हिन्दी कहावत का आशय यह है कि केवल चोर को मारने से क्या होगा ? चोर की नानी को मार दें, तो चोर का जन्म ही न हो । अशुद्ध व्यवहार की नानी कौन और उसे कैसे मारा जाय ? इन प्रश्नों का उत्तर देना बहुत कठिन है । शायद अपनी-अपनी समझ के अनुसार अलग-अलग उत्तर हों । यहाँ हम दो-तीन मोटी बातों का ही विचार करेंगे । उसमें भी व्यावहारिक पहलू पर ही जोर देना उचित होगा ।

शुद्ध और अशुद्ध वृत्ति

अगर मनुष्य-स्वभाव में ही ऐसी कोई चीज है कि जिससे अशुद्धि का रहना अवश्यम्भावी है, तो उसका सम्पूर्ण नाश करना असम्भव है । अशुद्धि की व्यापकता को देखते हुए यह स्वीकार करना होगा कि मनुष्य-स्वभाव में ऐसा कुछ अंश जरूर है, जो अशुद्धि को जन्म देता है । परन्तु चूँकि मनुष्य शुद्धि की ओर भी बढ़ता है, इसलिए यह भी मानना होगा कि शुद्धि का बीज भी उसमें है ।

संत सहजोबाई का नीचे लिखा भजन मननीय है :

हरि ने जन्म दियो जगमाहीं । गुरु ने आवागवन छुटाहीं ॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा । गुरु ने लई छुटाय अनाथा ॥
हरि ने कुटुम्ब जाल में गेरी । गुरु ने काटी ममता-बेरी ॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ । गुरु जोगी कर सब छुटायौ ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ । गुरु ने आतमरूप लखायौ ॥
हरि ने मोसूँ आप छिपायौ । गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ ॥

यह नहीं कि इस भजन का अर्थ अक्षरशः लिया जाय। भक्त ने इस भजन में हरि की तुलना में गुरु की महिमा अधिक बतायी है। हरि से आशय कुदरत, मनुष्य-स्वभाव लिया जा सकता है। सद्ग्रन्थ और संतो के अलावा मनुष्य खुद भी बहुत-कुछ अंश मे अपना गुरु है। आखिर गुरु के बताये हुए मार्ग से खुद को ही चलना पड़ता है। इसलिए हमारे मन की कमजोरियाँ कितनी भी हो, हम सन्त-जनो का उपदेश ग्रहण कर उन्हे अपने पुरुषार्थ से हटा सकते हैं।

मनुष्य अपूर्णता मे से पूर्णता की ओर जाने का प्रयत्न कर रहा है। पूर्णता के आड़े जो दोष आते हैं, उन्हे दूर करने का भी प्रयत्न होता रहता है। उसकी स्वार्थ-वृत्ति प्रबल है, पर उसमे परार्थ-वृत्ति भी है। उसे समाज मे रहना पड़ता है और समाज से ही उसे भरण-पोषण, विद्या, कला, ज्ञान आदि मिलते है। अनेक लोगो से उसके अनेक प्रकार के सम्बन्ध आते हैं। अगर वह इन संबंधो मे शुद्धि से व्यवहार न करेगा तो स्वयं उसको भी अशुद्धि का शिकार बनकर तकलीफ भोगनी पड़ेगी। इस तरह मनुष्य के लिए शुद्धि और अशुद्धि, दोनो के कारण मौजूद हैं। अच्छे संस्कारो से बुराई दबकर अच्छाई प्रकट होती है। इसके अलावा जिस समाज मे उसको रहना पड़ता है, उसमें अगर ऐसी व्यवस्था हो कि भलाई को प्रोत्साहन मिले और बुराई निंद्य मानी जाय तो व्यक्ति के आचरण के सुधार में काफी मदद मिल सकती है। इस प्रकार व्यक्तिगत और सामुदायिक प्रयास से अशुद्धि काफी घट सकती है।

सामाजिक भावना की आवश्यकता

हमारी परम्परा मे सामुदायिक हित की अपेक्षा व्यक्तिगत लाभ

पहला अध्याय

अशुद्ध-व्यवहार की जड़

एक हिन्दी कहावत का आशय यह है कि केवल चोर को मारने से क्या होगा ? चोर की नानी को मार दें, तो चोर का जन्म ही न हो। अशुद्ध व्यवहार की नानी कौन और उसे कैसे मारा जाय ? इन प्रश्नों का उत्तर देना बहुत कठिन है। शायद अपनी-अपनी समझ के अनुसार अलग-अलग उत्तर हों। यहाँ हम दो-तीन मोटी बातों का ही विचार करेंगे। उसमें भी व्यावहारिक पहलू पर ही जोर देना उचित होगा।

शुद्ध और अशुद्ध वृत्ति

अगर मनुष्य-स्वभाव में ही ऐसी कोई चीज है कि जिससे अशुद्धि का रहना अवश्यम्भावी है, तो उसका सम्पूर्ण नाश करना असम्भव है। अशुद्धि की व्यापकता को देखते हुए यह स्वीकार करना होगा कि मनुष्य-स्वभाव में ऐसा कुछ अंश जरूर है, जो अशुद्धि को जन्म देता है। परन्तु चूँकि मनुष्य शुद्धि की ओर भी बढ़ता है, इसलिए यह भी मानना होगा कि शुद्धि का बीज भी उसमें है।

संत सहजोबाई का नीचे लिखा भजन मननीय है :

हरि ने जन्म दियो जगमाहीं। गुरु ने आवागवन छुटाही ॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा ॥
हरि ने कुटुब जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता-बेरी ॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सब छुटायौ ॥
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतमरूप लखायौ ॥
हरि ने मोसूँ आप छिपायौ। गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ ॥

पाया गया कि मरे हुए हर व्यक्ति के पीछे व्यापारी को एक हजार रुपये का मुनाफा रहा। खाने को न मिलने के कारण रोज-रोज यातना भुगतते हुए प्राण कैसे जाते होंगे, इसकी कल्पना, जिनको खाने को मिलता है, वे कर ही नहीं सकते। सप्ताह दो सप्ताह बिल्कुल निराहार रहनेवाला थोड़ी कल्पना कर सकता है। देश भर में हर साल किसी-न-किसी सूबे में कुछ अंशो में अकाल रहता है। अब तो सरकारें प्रयत्न करके यथासंभव अनाज उपलब्ध करा देती हैं। फिर भी यह बात तो रह ही जाती है कि ऐसे संकटकाल मे भी धनिक लोग चीजों के भाव बढ़ाकर मुनाफा कमाने में संकोच नहीं करते। कुछ दानी लोग मदद के लिए जरूर आगे बढ़ते हैं, परन्तु उसका महत्त्व भी इससे अधिक नहीं कि संकट मे से धन कमाकर उसमें से थोड़ा सा दान कर दिया जाता है।

।चलित अर्थ-व्यवस्था

पैसे के लोभ के लिए हमारी प्रचलित आर्थिक-व्यवस्था भी म्मेवार है। अंग्रेजी राज्य के काल में पाश्चात्य अर्थशास्त्र और यता का बोलबाला रहा। अब भी प्रायः वैसा ही चल रहा है। जों को इंग्लैंड के हित मे भारत से धन ढोकर इंग्लैंड में ले जाना । जब खुद के लिए इतना लाभ उठाना था, तो भारत मे भी यहाँ छ लोगों को लाभ उठाने देना जरूरी था। देश के कुछ लोगो को थ बनाये बिना परदेशवालों का अपना काम संपन्न नहीं हो था। परिणामस्वरूप देश में आर्थिक विषमता बढ़ी। खास में भी धनिक-वर्ग रहा। परंतु वहाँ की सरकार टैक्सों तथा ।ार्थिक व्यवस्था के द्वारा गरीबो को, यहाँ तक कि बेकारो को

पर अधिक जोर रहा है। हमारे धार्मिक और व्यावसायिक विचारों मे व्यक्ति का अधिक खयाल किया गया है। पुरुषार्थ का लक्ष्य व्यक्तिगत मोक्ष माना गया है। संभव है कि इनके कारण सामुदायिक उत्कर्ष के लिए जिन गुणों की विशेष जरूरत है, वे उचित मात्रा में नहीं बढ़ पाये। व्यक्ति और समाज के संबंध की विचारधारा में परिवर्तन होने की आवश्यकता है। व्यक्ति समाज का अंग है, समाज की भलाई में ही उसकी भलाई है। अगर सारे समाज को कष्ट भोगना पड़े तो व्यक्ति भी कष्ट से नहीं बच सकता। इस प्रकार की भावनाएँ हममें दृढ़ होनी चाहिए।

धन का लोभ

यह तो स्पष्ट है कि अशुद्धि का मूल कारण धन का लोभ है। परन्तु धन का लोभ इतना क्यों बढा ? यह दृश्य व्यापक पैमाने पर हर क्षेत्र में दीख पडेगा कि करोड़ों आदमियों के कष्ट-यातनाएँ भोगते हुए भी सम्पन्न लोग उसी संकट में से अपना स्वार्थ साधने में नहीं हिचकिचाते। सन् १९४३ में बंगाल में जो अकाल पडा था, उसकी घटनाएँ बड़ी हृदय-विदारक हैं। उसके बाद के चार-पाँच वर्षों में अनाज की जितनी कमी थी, उतनी उस अकाल में नहीं थी। लड़ाई चल रही थी, यह एक विशेष बात थी, फिर भी उस अकाल की जाँच करने के लिए जो समिति मुकर्रर की गयी थी, उसने लिखा था कि ग्राहक, व्यापारी, किसान, जो समर्थ थे और जिनके हाथ आया, उन्होंने अनाज का खूब संग्रह कर लिया। अनाज के भाव इतने बढ़ गये कि गरीब जनता में अनाज खरीदने की शक्ति ही नहीं रही। उस अकाल में करीब तीस लाख स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे भूख से मरे। अनाज का मुनाफा और मरनेवालो की संख्या का परिमाण देखने पर

पाया गया कि मरे हुए हर व्यक्ति के पीछे व्यापारी को एक हजार रुपये का मुनाफा रहा। खाने को न मिलने के कारण रोज-रोज यातना भुगतते हुए प्राण कैसे जाते होंगे, इसकी कल्पना, जिनको खाने को मिलता है, वे कर ही नहीं सकते। सप्ताह दो सप्ताह बिल्कुल निराहार रहनेवाला थोड़ी कल्पना कर सकता है। देश भर में हर साल किसी-न-किसी सूबे मे कुछ अंशों में अकाल रहता है। अब तो सरकारें प्रयत्न करके यथासंभव अनाज उपलब्ध करा देती हैं। फिर भी यह बात तो रह ही जाती है कि ऐसे संकटकाल मे भी धनिक लोग चीजों के भाव बढ़ाकर मुनाफा कमाने में संकोच नहीं करते। कुछ दानी लोग मदद के लिए जरूर आगे बढ़ते हैं, परन्तु उसका महत्त्व भी इससे अधिक नहीं कि संकट में से धन कमाकर उसमें से थोड़ा सा दान कर दिया जाता है।

प्रचलित अर्थ-व्यवस्था

पैसे के लोभ के लिए हमारी प्रचलित आर्थिक-व्यवस्था भी जिम्मेवार है। अंग्रेजी राज्य के काल मे पाश्चात्य अर्थशास्त्र और सभ्यता का बोलबाला रहा। अब भी प्रायः वैसा ही चल रहा है। अंग्रेजों को इंग्लैंड के हित में भारत से धन ढोकर इंग्लैंड में ले जाना था। जब खुद के लिए इतना लाभ उठाना था, तो भारत में भी यहाँ के कुछ लोगों को लाभ उठाने देना जरूरी था। देश के कुछ लोगों को मध्यस्थ बनाये बिना परदेशवालों का अपना काम संपन्न नहीं हो सकता था। परिणामस्वरूप देश में आर्थिक विषमता बढ़ी। खास इंग्लैंड मे भी धनिक-वर्ग रहा। परंतु वहाँ की सरकार टैक्सों तथा अन्य आर्थिक व्यवस्था के द्वारा गरीबों को, यहाँ तक कि बेकारों को

उनसे बिना काम लिये भी घर बैठे मदद देती रही, जिससे गरीब लोग दीन-हीन नहीं बने। भारत के गरीबों और इंग्लैंड के गरीबों की तुलना ही नहीं हो सकती। वहाँ के गरीब यहाँ के खुशहाल लोगों जैसे रहे। यहाँ गरीबों की कोई परवाह नहीं की गयी। राज-सत्ता ने तथा धनिको ने उनको अपने भाग्य के भरोसे छोड़ रखा। आर्थिक विषमता बढ़ती गयी। दुर्भाग्य से वह खटकी भी नहीं। वास्तव में वह मनुष्य की करनी का परिणाम होते हुए भी हम मानते रहे कि वह हमारे काबू के बाहर तथा कुछ दूसरी अदृश्य शक्तियों का परिणाम है। आर्थिक विषमता में जब थोड़े लोग धनिक बनकर ऐशो-आराम में रहते हैं या प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं, तब दूसरों का दिल भी वैसा ही बनना चाहता है। प्रायः अशुद्धि के बिना धन इकट्ठा नहीं होता, इसलिए अशुद्धि बढ़ती जाती है। अगर पैसे का लोभ घटाना है, तो आर्थिक विषमता कम होनी चाहिए। समाज और राजसत्ता दोनों मिलकर यह कर सकते हैं। अब गरीब जनता आर्थिक विषमता घटाने की बात कर रही है और वह कुछ आतुर भी होने लगी है। परन्तु उसमें भी दोष यह है कि वह भी बेजा लोभ से मुक्त नहीं है। राजसत्ता भी विषमता घटाने की कुछ बात कर रही है। परन्तु वर्तमान खर्चीला शासन चलाने के लिए उसे जो धन चाहिए, वह धनिकों को कायम रखकर उनसे टैक्सों द्वारा प्राप्त करने की नीति, विषमता को कहाँ तक घटने देगी, यह एक विचारणीय प्रश्न है। फिर भी समता जमाने की माँग है। उसे टाला नहीं जा सकेगा। उसमें आवश्यक सफलता मिलने तक समाज को भी पैसे की महिमा घटाने के उपाय करते रहना चाहिए।

ता० ९ जनवरी, १९५२ के 'हरिजन सेवक' में श्री मायकल

फस के भ्रष्टाचार और पैसे सम्बन्धी अंग्रेजी लेख का हिन्दी अनुवाद छपा है। उपयोगी होने के कारण वह यहाँ उद्धृत किया जाता है :

भ्रष्टाचार का कारण और उसका निवारण

"भ्रष्टाचार, कालाबाजार, सग्रहबाजी, सट्टा आदि समाज के लिए हानिकर प्रवृत्तियों का कारण क्या है? बेशक, ऊपर से तो यही प्रतीत होता है कि यह सारा पाप पैसे के लिए हो रहा है। लेकिन सोचने की बात है कि आखिर लोग पैसा चाहते किसलिए है? यह प्रश्न सुनने मे हास्यास्पद मालूम हो सकता है, पर उसमे अर्थ है। गुनाह अगर ज्यादातर गरीब लोग ही करे, तो उससे सूचित होगा कि वे अपनी जरूरत से लाचार होकर ही कानून का उल्लघन करते है। कोई गरीब सरकारी कर्मचारी अगर इनाम या रिश्वत ले तो शायद हम उसे क्षम्य मान ले, क्योंकि उसका वेतन जीवन की जरूरतो के लिए पर्याप्त नही है। इसी तरह गरीब व्यापारी भी अपनी चीज का दाम एक-दो आना महँगा ले सकता है। अगर ऐसा हो, तो इस आचरण की हम निन्दा तो करेंगे, लेकिन उसके कारणो को दूर करने की कोशिश भी करेंगे। उस सरकारी नौकर की तनख्वाह और व्यापारी का मुनाफा बढा देगे। लेकिन हम देखते है कि इन गुनाहो के लिए बडे-बडे मिल-मालिक और लखपति, करोडपति तथा उच्च सरकारी पदाधिकारी भी पकडे जाते है। इनके बारे मे तो ऐसा नही कह सकते कि वे अपनी जरूरत से लाचार होकर ही ऐसा करते है। वे तो पैसा कमाने की, उसका ढेर लगाने की गरज से ही ऐसा करते है।

"अक्सर यह माना जाता है कि धनोपार्जन की प्रवृत्ति उन परिस्थितियों से उत्पन्न होती है, जिन्हे जीवन-सघर्ष का नाम दिया जाता है और जीवन के साधनों की प्राप्ति के बाद भी या तो इस बीच मे उत्पन्न हो गयी सग्रह की आदत के कारण चलती रहती है, या इसलिए कि व्यक्ति और भी ज्यादा सुरक्षा की इच्छा करने लगता है। लेकिन इस विषय पर अधिक बारीकी से विचार करे, तो यह नतीजा प्रकट होता है कि इस प्रवृत्ति को न तो यह कहकर समझाया जा सकता है कि वह सिर्फ एक आदत है जो उत्पन्न हो गयी है और न इस तरह ही कि सग्रह का काम अतिरिक्त सुरक्षा के लिए किया जाता है।

"मनुष्य सिर्फ रोटी पर नहीं जीता, रोटी में वह जीवन की सफलता नहीं मानता। शरीर की आवश्यकताओं के सिवा, वह मान-सम्मान, आदर और प्रतिष्ठा आदि भी चाहता है। अधिकांश लोग धन का सचय इसलिए नहीं करते कि वे उससे जीवन की सुख-सुविधाएँ प्राप्त कर सकते है। असल मे धन से उन्हे समाज में प्रतिष्ठा का स्थान दिया जाता है, उसके लिए ही वे धन जोडते हैं। माना तो यह जाता है कि हम लोकतन्त्र-शासित राज्य में रह रहे है, लेकिन इस तथ्य को देखने के लिए किसी गहरे अध्ययन की अपेक्षा नहीं है कि हमारे सविधान में चाहे जो लिखा हो, समाज के विभिन्न सदस्यों के सम्बन्धो की रचना को देखें तो प्रतीत होगा कि हमारा राज्य का रूप लोकतन्त्र की अपेक्षा धन-तन्त्र का ही ज्यादा है। धनिको को विशेष सम्मान दिया जाता है। यह दृश्य इतना सामान्य है कि उसकी चर्चा की जरूरत नही है। कोई धनाढ्य व्यक्ति गुनाह भी करता है, तो उस गुनहगार को जो व्यवहार मिलता है, वह गरीब वर्ग के ऐसे ही गुनहगार के प्रति जो व्यवहार होता है, उससे भिन्न होता है। हम देखते हैं कि ऐसी घटना होती है तो अखबार सुर्खी के अक्षरों में बडा शीर्षक देते है—"करोडपति · गिरफ्तार," गोया यह सूचित करते है कि कोई असाधारण घटना घट गयी है। अपराधी के कटघरे में खडा होने पर या अदालत की न्याय विधि के दरमियान, या न्यायाधीश के निर्णय में उसका सम्बोधन और उल्लेख एक साधारण अपराधी से अलग तरह का होता है। सजा होने पर और भोग चुकने पर भी अमीर आदमी, जब तक उसके पास पैसा है, समाज में अपना पुराना दर्जा फिर पा लेता है।

"अमीरो के लडके-लडकियों की शादी होती है, तो अखबारों में उनकी तसवीरें छपती हैं और उनका निरर्थक रूप मे विस्तृत वर्णन प्रकाशित होता है। मेहमानों का, उनकी पोशाक का, यहाँ तक कि भोजन का भी वर्णन आता है। सार्वजनिक प्रार्थना हो, या धार्मिक समारम्भ, किसी भी आयोजन में वह पहली पक्ति मे बैठता है। चुनाव के दिन आते हैं, तो लोग उसीके पास पैसा माँगने जाते है।

"कोई उत्तम महात्मा ही क्यों न हो, यदि वह गरीब है, तो उसकी पूछ नहीं होती। लेकिन अमीर आदमी, फिर चाहे वह बेईमान हो, आदर पाता है। ऐसी हालत मे किसी व्यापारी से यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वह सीधी राह पर चलकर ऐसा नगण्य हो जाय कि उसके साथ कोई भी गण्यमान्य

व्यक्ति सरोकार न रखे ? ऐसी स्थिति मे अमीर आदमी को मनचाहे साधनो से पैसा कमाने की इच्छा और कोशिशो से रोकने का क्या उपाय हो सकता है ? फिर, चूंकि ऊपरी वर्ग का अर्थ, अमीर-वर्ग ही होता है, सामान्य जन भी अमीरी को अभीष्ट मानते है और उसके लिए प्रयत्न करते हैं। ऐसे वातावरण मे समाज-विरोधी प्रवृत्तियाँ बढती है।

"यदि हमे यह सारा भ्रष्टाचार मिटाना है, तो हमे समाज की रचना मे बुनियादी परिवर्तन करना होगा। समाज की रचना ऐसी होनी चाहिए कि किसी व्यक्ति को उसके पैसे के कारण कोई सम्मान न दिया जाय। समाज पर इस फर्क का ठीक क्रांतिकारी परिणाम हो, इसलिए कुछ समय तक ऐसा करना होगा कि हम अगर कोई व्यक्ति अमीर है तो उसे सम्मान दे ही नही। इसमे यह भी हो सकता है कि वह व्यक्ति दूसरी तरह से योग्य और प्रतिष्ठा का सही पात्र होते हुए भी उसका सम्मान, सिर्फ इसलिए कि वह अमीर है, न किया जाय। इसमे कोई चिन्ता की बात नहीं है। ऐसे अमीर, अगर वे सचमुच सज्जन है, तो वे प्रतिष्ठा मिलने न मिलने की कोई परवाह नही करेंगे, क्योकि उन्हें प्रतीति रहेगी कि इससे हमारे देश का कल्याण होनेवाला है।

"यह मनोवृत्ति जब सर्वत्र फैल जायगी, तब ज्यादा-ज्यादा लोग एक सीमा पर पहुँचकर—यानी अपने जीवन-यापन के लिए काफी कमाने के बाद, पैसा पैदा करना और जोडना छोड देगे। साथ ही अगर हम सामान्य और पूजनीय व्यक्ति का एक नया आदर्श खडा करे, उदाहरण के लिए, समाज-सेवक, साधु-पुरुष, साधारण किसान और मजदूर—तो एक बहुत बडा काम हम करेंगे, एक नयी जीवन-दृष्टि का विकास होगा और भारत की इस पुरातन-भूमि मे अभिनव महिमा-मण्डित गौरवशाली प्रजा का आविर्भाव होगा।

"अगर यह विचार सही मालूम होता हो, तो इसका आरम्भ गाधीजी के प्राथमिक अनुयायियो यानी सर्वोदय के सेवको को करना होगा। वे अपने आयोजनो मे, सभा-समितियो मे धनवानों को कोई विशेष सत्कार न देकर इसकी शुरुआत करे, बाद मे इस चीज को काग्रेस उठा ले और उसका अमल करे। काग्रेस को चुनावो के लिए लगनेवाला पैसा, अगर उसकी जरूरत ही हो तो, गरीबो से आना-पाई कर-करके लेना चाहिए। धनिकों से लाख-करोड करके नही।

"अभी की बात है। कहीं किसी चुनाव के सिलसिले में यह बात कही गयी है कि उम्मीदवार को प्रचार के लिए अपना ही पैसा खर्च करना चाहिए। यह बुनियादी तौर पर गलत है। ये चीजें छोड़नी होंगी। कोई आदमी अगर पचास हजार रुपया खर्च करता है—यह रकम कही गयी थी, काल्पनिक नहीं है—तो इस रुपये के बदले मे, वह न सिर्फ प्रतिष्ठा की आशा रखता है और उसे पाता है, उसका किसी न किसी तरह इस रुपये को वापस पाने की कोशिश भी करना सम्भव है।

"अगर कांग्रेस यह दृष्टि अपना ले, तो धीरे-धीरे समाज का चेहरा ही बदल जाय। जब यह स्पष्ट हो जायगा कि पैसे के जरिये सिर्फ दाल-रोटी या सुख-सुविधा ही ली जा सकती है, सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं, तो सिर्फ दाल-रोटी के लिए अपना ईमान बेचनेवालों की और अमीरों की नकल करनेवालों की संख्या कम होती जायगी। जब हमारा राष्ट्रीय आदर्श ऐसे साधु और महात्मा का हो जायगा, जो निरहकार भाव से अपने मानव-भाइयों की सेवा करता है, तो राम राज्य न सही, पर आज की अपेक्षा कहीं अधिक शीलवान भारत का दर्शन होगा।"

उक्त लेख के लेखक ने लिखा है कि यदि हमें भ्रष्टाचार मिटाना है, तो समाज की रचना में बुनियादी परिवर्तन करना होगा। लेकिन उन्होंने जो सुझाव दिया है, वह समाज के बुनियादी आर्थिक परिवर्तन का नहीं है। उनके सुझाव का अवलंबन करने से व्यावहारिक दृष्टि से लोक-मानस में परिवर्तन हो सकना सम्भव है। इसलिए वह बहुत उपयोगी है। परन्तु यदि बुनियादी परिवर्तन करना हो तो अभी देश में भूदान-यज्ञ का जो आन्दोलन चल रहा है, उसे कामयाब करना आवश्यक है। उस विषय में यहाँ अधिक लिखने की जरूरत नहीं है। पाठक कृपा कर भूदान-यज्ञ और संपत्तिदान-यज्ञ के तथा सर्वोदय विचारधारा के साहित्य का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें। एक विचारधारा यह भी है कि अगर हिंसा से या कानून से आर्थिक समता आ जाय, अर्थात् पूँजीवादी

एवं व्यक्तिवादी अर्थव्यवस्था नष्ट होकर साम्यवादी अर्थव्यवस्था हो, तो अशुद्धि के लिए स्थान नहीं रहेगा। परन्तु यह भी सही नहीं है कि केवल भौतिक परिवर्तन होने से अशुद्धि मिट जायगी। जीवन शुद्धि के बिना व्यवहार शुद्धि नहीं हो सकती। प्रश्न अंतःकरण की शुद्धि का है। इसका कुछ विवेचन इस पुस्तिका के दूसरे अध्याय मे किया गया है।

दान में कीर्ति का दोष

इसी सिलसिले में एक दूसरी वात पर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। श्रीमान लोग अपने धन में से कुछ दान किया करते है। यह प्रवृत्ति वहुत अच्छी है और वह वढ़नी चाहिए। पू० विनोवाजी ने भूदान-यज्ञ और संपत्तिदान-यज्ञ का प्रारंभ किया है। उन्हे सफल करने की हम सवको कोशिश करनी चाहिए। इसमें नित्य त्याग की भावना है, जिससे हमें अन्तःकरण की शुद्धि करने का एक साधन मिलता है। यहाँ यह खयाल में रखना चाहिए कि इन यज्ञों में 'दान' शब्द का उपयोग 'संविभाग' के अर्थ मे हुआ है। अर्थात् जायदाद पर अपनी निजी व्यक्तिगत मालिकी न मानकर उस पर समाज का हक मानना चाहिए और उसका एक अंश समाज को सदा अर्पण करते रहना चाहिए। आखिर मे जायदाद का उपयोग ट्रस्टी के तौर पर समाज के हित में होना चाहिए। वैसे, परंपरा के अनुसार चलनेवाला सात्त्विक दान भी प्रशंसनीय है। पूर्व-काल में भी दान को स्थान मिलता रहा है। समय-समय पर दान के स्वरूप भिन्न-भिन्न रहे हैं। पुराने जमाने में दान में पारलौकिक विचार भी रहा। इस जमाने मे उसका स्वरूप कुछ वदल गया है। सामाजिक और सार्वजनिक-हित के कामों में उसका उपयोग होने लगा है।

इस वृत्ति का हमे स्वागत करना चाहिए। परंतु इस समय के दानों में एक बड़ा दोष यह घुस गया है कि दाता का कीर्ति या स्मारक की तरफ बेहद झुकाव बढ़ गया है। हमारे शास्त्रों ने तो गुप्त-दान की ही महिमा गायी है। दूसरे धर्मवालों ने भी ऐसा ही कुछ लिखा है। अगर धनिक अपने दान के परिमाण में ही कीर्ति चाहे तो हम उसे क्षम्य मान लें, परन्तु व्यावसायिक मुनाफाखोरी की तरह कीर्ति में भी मुनाफाखोरी बढ़ गयी है। दान में भी उनकी वृत्ति पूरी व्यावसायिक बन गयी है। कोई किसी संस्था को एक लाख रुपये की मदद देता है, तो वह चाहता है कि उसके बदले में दस लाख के दान की कीर्ति मिले। उदाहरणार्थ किसी संस्था के लिए दो-तीन लाख के मकान की जरूरत है, हम जानते हैं कि संस्था के चलाने में अनेक व्यक्तियों को त्याग करना पड़ता है, कार्यकर्ताओं को आधे पेट रहकर और लम्बी अवधि तक संस्था चलाने की जिम्मेवारी उठानी पडती है, इसका मूल्य पैसे में नहीं आँका जा सकता। लेकिन जिसके पास करोड़ों रुपये हैं और जो धन कमाने में शुद्धि-अशुद्धि की परवाह न कर, वह एकाध लाख रुपया देकर सम्पूर्ण संस्था को अपना नाम देने की शर्त रखता है। संस्था के संचालक भी संस्था चलाने की धुन में, लाचारी से या व्यापक पैमाने पर वैसा चल रहा है, यह देखकर ऐसी अनुचित शर्त मान लेते हैं। बड़े-बड़े सत्ताधीश उन सस्थाओं का उद्घाटन कर दाता का गुणगान करते हैं और कभी-कभी इस सारे प्रकरण के फलस्वरूप दाता को अधिक धन कमाने के मौके भी मिल जाते हैं। केवल पैसे के बल पर किसीका गौरव बढ़ना अनीतिपूर्ण ही है। गौरव हो, लेकिन गुण का, धन का नहीं।

धनिक दाता को भी सोचना चाहिए कि अच्छे परोपकारी काम

की सुगंधि अपने आप फैलती है। उसका पुण्य भी अधिक होता है। सौदा करके उसे घटाना इष्ट नहीं है। यह भी सोचना चाहिए कि अगर नाम या स्मारक करना है तो वह आदरणीय होना चाहिए। ऐसे दाताओं के बारे मे लोग कहते हैं, थोड़ा सा धन लगाने में जोर क्या लगा ? कालाबाजार में अथवा बेईमानी से काफी कमा लिया है। नाम के लिए दूसरो के दिल में आदर तब ही खड़ा होगा, जब हममें उसके लायक गुण होगा, नहीं तो अनादर भी हो सकता है। एक जमाना था कि जब अंग्रेजी राज्य द्वारा दी गयी उपाधियाँ जनता मे बड़प्पन का कारण मानी जाती थी। लेकिन आगे चलकर वे ही उपाधियाँ देशद्रोह का चिह्न मानी जाने लगीं। ऐसा समय आ सकता है कि जब केवल पैसे के बल पर खड़े किये गये स्मारक या नाम कभी तिरस्कार के भी पात्र हो। बेहतर यह है कि संस्थाओं को नाम साधु-संतों के या विशेष गुणवाले व्यक्तियों के ही दिये जायँ, जिससे सुननेवाले या देखनेवाले को कुछ स्फूर्ति मिले। उस श्रेय में दान-दाता का भी कुछ अंश रहेगा ही।

परिग्रह और ऐशो-आराम की वृत्ति

कीर्ति के अलावा ऐश-आराम की विशेष सामग्री जुटाना भी पैसे का एक उद्देश्य है। आजकल औद्योगिक नीति का यह भी एक उद्देश्य माना जाता है कि जीवन का स्तर (Standard of living) बढ़े। भारत जैसे गरीब देश में गरीब लोगो के जीवन का स्तर बढ़ाना है और वह जरूर बढ़ना चाहिए। लेकिन जब 'जीवन-स्तर बढ़ना चाहिए', इन शब्दो का प्रयोग किया जाता है, तब धनिकों का या जिनका जीवन आज ऐश-आराम का है, उनका जीवनस्तर घटना चाहिए, इसका विचार तो किया ही नहीं जाता। सुविधाएँ प्रायः

उन्हें ही उपलब्ध होती हैं। इस तरह जीवनस्तर के बढ़ाने की बात करना एक प्रकार से धनिकों का परिग्रह बढ़ाने की ही बात हो जाती है। बिना कारण परिग्रह बढ़ाने में सदा असंतोष ही रहता है। मनुष्य की कामनाओ की पूर्ति में ही उनके बढ़ने का बीज है। जहाँ करोड़ों लोग दरिद्रावस्था में हैं, वहाँ थोड़े धनिकों के जीवनस्तर का बढ़ना उचित नहीं है। उल्टे, वैसी चीजों का गरीबों में भी मोह बढ़ता है और अशुद्धि को प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए शरीर और मन को स्वस्थ रखने योग्य चीजों से अधिक चीजों का संग्रह बढ़ाने का विचार करना भारत की वर्तमान दशा में गलत है। समाज में अपरिग्रह-वृत्ति बढ़ने के लिए आवश्यक है कि धनिक तथा सत्ताधीश लोग अपना जीवनस्तर घटावें और अपरिग्रह का उदाहरण जनता के सामने रखें। जहाँ कहीं शान-शौकत, ठाट-बाट, फिजूल-खर्ची दीख पड़े, उसके खिलाफ आवाज उठनी चाहिए और समाज में ऐश-आराम के जीवन के विरुद्ध विचारधारा चलनी चाहिए। ऐसे वातावरण का निर्माण होना चाहिए कि परिग्रह और ऐशो-आराम समाज-द्रोह के लक्षण समझे जायँ।

● ● ●

दूसरा अध्याय

शुद्ध-व्यवहार की जड़

मेरे खयाल से शुद्ध व्यवहार की जड़ सत्य की उपासना एवं धर्म है।

आपसी व्यवहार में सत्य-निष्ठा

एक ओर मनुष्य के साथ स्वार्थ-भावना है तो दूसरी ओर उसका जिन-जिन से सम्बन्ध आता है, उनके प्रति कर्तव्य भी है। इस कर्तव्य-बुद्धि द्वारा स्वार्थ का नियन्त्रण होना चाहिए। हरएक मनुष्य की इच्छा रहती है और वह स्वाभाविक है कि दूसरा उसके साथ सचाई से पेश आये, छल-कपट न करे, धोखा न दे। ऐसी हालत में उसका भी यह पवित्र कर्तव्य हो जाता है कि वह दूसरों के साथ उसी तरह पेश आये। यह सचाई केवल दिखावे की न होकर मन, वचन और क्रिया की होनी चाहिए। अन्तःकरण पारदर्शक काँच की तरह स्वच्छ हो, ताकि दूसरे लोग भी देख सकें कि हमारे दिल में क्या चल रहा है। अर्थात्, हममें पूरी सत्य-निष्ठा हो। हमारे अन्तःकरण की वृत्ति सत्यमय हो जानी चाहिए। हमारा दिल और हमारी वृत्ति ऐसी बन जाय कि हमारी इच्छा सदा सत्य-व्यवहार की ही रहे और हम शुद्ध व्यवहार ही करें। शुद्ध व्यवहार के लिए इसके सिवा दूसरी और कौन सी प्रेरणा हो सकती है कि सत्य की हमारी उपासना सब प्रसंगों में और सतत चालू रहे। सत्य धर्म का प्राण है। "नहि सत्यात् परो धर्मः", "नहिं असत्य

सम पातक पुंजा।'' सब धर्मों ने सत्य पर जोर दिया है। महात्माजी तो यहाँ तक कहते थे कि सत्य ही ईश्वर है।

सत्य का दर्शन ?

सत्य के बारे में सबकी ऐसी मान्यता होते हुए भी अगर यह कहा जाय कि सब जान या अनजान मे, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, कुछ-न-कुछ असत्य करते हैं या उनसे असत्य होता है, तो इसमें अतिशयोक्ति जैसी कोई बात नहीं दीखती। भूतकालीन और वर्तमानकालीन कुछ अपवाद जरूर हैं, परन्तु आम जनता की दशा कुछ ऐसी ही है। इस कमजोरी को दूर करने का भरसक प्रयत्न होना चाहिए। स्वार्थ के गुलाम बने रहने में मानवता नहीं है। मानवता तो इसीमें है कि प्रयत्नपूर्वक बुरी वृत्तियों को दबाकर अच्छी वृत्तियो का विकास किया जाय। मनुष्य को चाहिए कि वह प्रकृति का गुलाम न रहकर उससे ऊँचा उठे और अपनी जीवन-शुद्धि करता रहे।

मनुष्य की यह बहुत बड़ी दुर्बलता है कि वह एकाएक अपना दोष कबूल नहीं करता। इसमें उसका अहंकार आड़े आता है। वास्तव मे विद्या का परिणाम यह होना चाहिए कि वस्तु जैसी है, वैसी ही हम उसे देखें। परन्तु विद्या आजकल कमजोरी का समर्थन करने में चतुर-सी बन गयी है। एक तो सत्य को पहचानना पहले ही आसान नहीं है। मनुष्य अपूर्ण है और वह किसी न किसी अश में अपूर्ण बना रहेगा। किस परिस्थिति में कौनसा व्यवहार सत्याचरण है और कौनसा असत्य, इसका सही निर्णय करना कभी-कभी सचमुच मुश्किल हो जाता है। एक उदाहरण लें। कहीं-कहीं सौ या पचास मील के भीतर डाकगाड़ी मे तीसरे

दर्जे से प्रवास करने की इजाजत नहीं है; इस कारण कई लोग विना टिकट के प्रवास करते रहते है और टिकट कलक्टर के हाथ में कुछ पैसे रखकर अपना काम चला लेते हैं। कुछ लोग टिकट लेकर ही जाते हैं, परन्तु अपने स्टेशन का टिकट न लेकर सौ या पचास मील के आगे के स्टेशन का तीसरे दर्जे का टिकट लेकर प्रवास करते हैं। यह व्यवहार सत्य के अनुरूप है या नहीं ? प्रवासी कह सकता है कि मैने इसमें अपना पैसा वचाया नहीं, रेलवे का नुकसान किया नहीं, कुछ ज्यादा ही पैसे दिये हैं। दूसरी ओर रेलवे द्वारा ऐसा नियम वनाने का कुछ कारण तो है ही। मुख्य कारण दूसरे प्रवासियो की तकलीफ कम करने की दृष्टि से भीड़ न होने देना है। नियम के खिलाफ प्रवास करके वे भीड़ तो बढ़ाते ही हैं। इन दोनो दृष्टियों में से सही कौनसी है, इसका निर्णय करना, वहस करने वैठें तो कठिन है, अन्यथा आसान भी। जीवन में इस प्रकार के अनेक प्रसंग आते हैं, जिनमें अमुक व्यवहार सचाई का है और अमुक नहीं है, इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है। अतः हमें यह मानकर चलना पड़ता है कि निःस्वार्थ भाव से और विना किसी मोह या विकार के जो वात हमारी शुद्ध वुद्धि को सही दीखे, वही व्यावहारिक दृष्टि से सत्य है। जव तक हम उसके अनुसार चलते हैं, तव तक दोप के पात्र नहीं वनते, क्योंकि हम जो कुछ करते हैं, वह ईमानदारी से करते हैं।

असत्य का समर्थन

परन्तु कुछ भाइयों का कहना है कि कौनसा व्यवहार सत्य है और कौनसा असत्य, यह स्पष्ट होते हुए भी हमेशा उसे व्यवहार में लाना लाजिमी क्यों माना जाय ? संतो द्वारा सत्य की महिमा का

गाया जाना और उसका अमल करना एक बात है और रात-दिन सांसारिक व्यवहार चलाना बिल्कुल दूसरी। सदा सत्य न मानने वालों से काम पड़ता है, इसलिए केवल सिद्धांत के पीछे पड़कर औ नुकसान उठाकर दूसरों को अपनी भलाई का फायदा उठाने क मौका क्यों दिया जाय ? वे यह भी कहते हैं कि ऐसे अनेक प्रसंग हो सकते हैं कि जब अच्छी बात साधने के लिए थोड़ी बुराई का आश्रय लेना अनुचित नहीं मानना चाहिए। आगे बढ़कर वे यहाँ तक भी कहते हैं कि इस तरह का म का देखकर व्यवहार करना ही सच्चा व्यावहारिक सत्य है, उसे असत्य कहना ही गलत है। अपनी इस विचारधारा को स्पष्ट करते हुए वे कुछ प्रसंगों का वर्णन भी करते हैं जो प्रायः काल्पनिक ही होते हैं। एक प्रसिद्ध काल्पनिक उदाहरण यह है कि एक व्यक्ति किसी भले और निरपराध व्यक्ति की हत्या करने के लिए उसका पीछा कर रहा है। मुझे उसका पता मालूम है और पीछा करनेवाला अगर मुझसे पूछे तो मैं गलत पता क्यों न बता दूँ, ताकि उस निरपराध की जान बच जाय और इसका दुष्ट हेतु सफल न हो। इसका इतना ही उत्तर काफी होगा कि ऐसे अवसर पर मैं उत्तर ही न दूँ, बिल्कुल मौन रह जाऊँ। संभव है कि वह गुस्से में मेरी जान ही ले ले। जो लोग सत्य की उपासना में परमत्याग की आवश्यकता नहीं मानते, उनके लिए यह सुझाव बेकार है। फिर भी हमें एक ऊँचे सिद्धांत के लिए बड़े से बड़े त्याग की आवश्यकता माननी होगी।

साधन-शुद्धि का प्रश्न

यह बहस केवल सिद्धात या किसी पराकाष्ठा के प्रसंग तक ही सीमित रहती तो भी एक बात थी, किंतु बहुत बार तो वह छोटे-छो

हानि-लाभ के मौकों के लिए भी पेश की जाती है। यहाँ साध्य और साधन की शुद्धि का प्रश्न खड़ा होता है। कुछ लोग कहते हैं कि अगर हमारा हेतु शुद्ध है, तो साधन की शुद्धि पर इतना जोर देने की आवश्यकता नहीं। वास्तव में देखा जाय तो साधन ही हमारे हाथ की बात है। उसी पर हमारा काबू चल सकता है। साध्य का सफल होना उन अनेक बातो पर अवलम्बित है, जिन पर हमारा वश नहीं चलता। इसलिए केवल साध्य को, जो हमारे काबू के बाहर है, महत्त्व देना और साधन को, जो हमारे हाथ की बात है, गौण मानना गलत होगा। यह भी मानना गलत है कि बुराई से भलाई हो सकती है। अशुद्ध साधनो के अवलम्बन से जगत् में कितने ही अनर्थ हुए हैं।

शास्त्रों के हवाले

ये भाई अपने मत-समर्थन में शास्त्रो का भी आधार लेते हैं। शास्त्रो मे ऐसा आधार है या नहीं, यह भी एक प्रश्न ही है; क्योंकि शास्त्र भी अनेक व्यवहारो का वर्णन किसी उद्देश्य से ही करते हैं। शुद्ध-अशुद्ध सब तरह के व्यवहारों को, लोगों को समझाने के लिए, उनमें स्थान देना शायद जरूरी भी हो। लेकिन बहुत बार हम उसका मर्म न समझकर अपने मत के अनुकूल अर्थ निकाल लेते हैं। धर्मराज के "नरो वा कुंजरो वा" प्रकरण से हम यह सार निकालते हैं कि अगर धर्मराज ने भी वैसा किया, तो हमें वैसा करने मे दोष क्यों लगना चाहिए? लेकिन उसी प्रकरण के सिलसिले ' महाभारतकार ने बता दिया है कि जो धर्मराज का रथ उस थन के पहले अधर चलता था, वह बाद मे धरती पर आ टिका। नी ग्रंथकार ने उसमें असत्य के दोष को बतला ही दिया है।

इसी प्रकार हिंसा के समर्थन में शास्त्रों का आधार लिया जाता है। यह तो मानना होगा कि जहाँ अन्याय होता है, वहाँ उसके प्रतिकार का भी कोई न कोई इलाज होना ही चाहिए। ऐसा न हो तो समाज का काम चलना मुश्किल हो जाय। अब तक प्रायः अन्याय के प्रतिकार के लिए दण्ड, लड़ाई आदि उपयुक्त माने गये। लेकिन अब दण्ड और लड़ाई का स्थान सत्याग्रह ले सकता है, यह बात महात्माजी ने केवल प्रतिपादित ही नहीं की, एक बड़े पैमाने पर अमल में भी लाकर सिद्ध की। अब जब यह पाया गया है कि सब क्षेत्रों में हिंसा का मुकाबला अहिंसा के द्वारा हो सकना सम्भव है, तो सिद्धांत रूप से यह मानना उचित होगा कि अन्याय के प्रतिकार के लिए अशुद्ध साधनों का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं रह जाती। व्यावहारिक दृष्टि से हम भिन्न क्षेत्रों में अहिंसा के द्वारा कहाँ तक पहुँच सकते हैं, यह बात अलग है। परन्तु सिद्धान्त रूप से सत्य और अहिंसा को अटल मान लेने पर उनकी ओर ही हम धीरे-धीरे निःशंक रूप से बढ़ सकते हैं।

अहिंसा-विरोधी विचार का परिणाम

दूसरों से व्यवहार करने में सत्य के समान ही प्रेम का भी महत्त्व है। जिन पर हमारा प्रेम होता है, उनके प्रति हम छल-कपट नहीं करते। अगर हमारे प्रेम की वृत्ति व्यापक बन जाय, तो किसी के भी प्रति हमसे छल-कपट या अशुद्ध व्यवहार नहीं होगा। विगत तीस-चालीस वर्षों में सत्य और अहिंसा शब्द जोरों से हमारे सामने आये। अहिंसा प्रेम का ही पर्यायवाची शब्द है। इसका भी महत्त्व समझना आसान होना चाहिए। मैं नहीं चाहता कि कोई मुझसे द्वेष करे। मैं प्रेम का भूखा हूँ और चाहता हूँ कि सब मुझ पर प्रेम

करें। अतः मेरा भी धर्म हो जाता है कि मैं सब पर प्रेम करूँ। फिर भी ज्यों-ज्यों महात्माजी ने जीवन के सब क्षेत्रो मे, राजनीति मे भी, सत्य और अहिंसा पर जोर दिया, त्यों-त्यो भारत मे एक वर्ग ने उसके विरुद्ध भी प्रचार किया। "शठे शाठ्यम्" आदि उक्तियाँ सामने आयीं। महात्माजी की हत्या को भी इसी विचारधारा का फल समझना चाहिए। उस कृत्य को व्यक्तिगत समझना गलत होगा। वह व्यक्ति तो एक समूह के मतविशेष का प्रतिनिधित्व करता था, जो मानता था कि महात्माजी देश का बड़ा अकल्याण कर रहे हैं। इसलिए कुछ व्यक्तियो के सिर पर यह भूत सवार हुआ कि साधन-शुद्धि आदि की परवाह न कर उनकी हत्या करने में हर्ज नहीं है। इस जमाने में महात्माजी जैसे की हत्या होना एक ऐसा महान् अनर्थ है, जिससे साधन-शुद्धि के बारे मे हमारी ऑख पूरी तरह खुल जानी चाहिए।

व्यवहार में सत्य स्वाभाविक बन जाय

अगर हरएक व्यवहार के बारे में हम सोचने बैठेंगे कि उसमें सत्य का अनुसरण है या नहीं, तो शायद निर्णय करना आसान न हो और हर वक्त प्रत्येक व्यवहार के बारे में सोचने बैठें, तो शायद समय ही न मिले। इसलिए आवश्यकता यह है कि हमारी वृत्ति ही दृढ़ अभ्यास से सत्यमय बन जाय, ताकि हमारा हर आचरण स्वभावतः सत्यमय हो और जहाँ भी असत्य हो, हमें वह तुरन्त दीख पड़े। किसी भी सद्गुण का सम्पादन तब ही ठीक-ठीक हुआ मानना चाहिए जब वह स्वभाव-सिद्ध हो जाय। जब तक उसके लिए प्रयास करना पड़ता है, तब तक वह अपूर्ण है और उसे पूर्ण करने की हमें कोशिश करते रहना चाहिए।

सत्य से व्यवहार न चल सकने की दलील

जब कभी सत्यासत्य के बारे में चर्चा होती है, तब यही कहा जाता है कि पूरी सचाई से व्यवहार चलाना मुश्किल होता है। कुछ अपवाद भले ही हों, लेकिन जनता मे सामान्य विचार यही पाया जाता है । किसी धंधेवाले को यह विश्वास नहीं है कि उसका धंधा सचाई-पूर्वक किया जा सकेगा । इसमें गरीब-अमीर का भी भेद नहीं दीखता । जिसके पास विपुल धन है, उसे भी अपना कारो-बार सचाई से चला सकने में विश्वास नहीं है । व्यापारी कहते हैं—माल के गुण-धर्म के वर्णन में चढ़ावा किये बिना तथा मोल-तोल जँचाने में अन्तर रखे बिना काम नहीं चलता । यही बात कारखानेवालों की और मजदूर-मालिकों की है । शिक्षा-संस्थाएँ, जो सरस्वती के मन्दिर हैं, वहाँ भी निर्मलता नहीं पायी जाती । राजनैतिक क्षेत्र में तो "नृपनीतिः अनेक-रूपा" प्रसिद्ध ही है । दूसरो की तो क्या, वैद्य लोग भी कहते हैं कि अगर मरीज को उसके स्वास्थ्य की सही हालत बता दी जाय तो वह हाय खाकर मर जायगा, इसलिए उसके समाधान के लिए असत्य बोलने में हर्ज नहीं है । असत्य के समर्थन में कुछ-न-कुछ दलीलें मिल ही जाती हैं, जैसे वकालत के धंधेवाले कहते हैं कि वे तो अपने मुवक्किल के मुखमात्र हैं । अगर वकील के मुख से जान-बूझकर भी असत्य निकलता है तो उसका दोष मुवक्किल को लगता है, वकील को नहीं । परन्तु ऐसे समर्थनों में यह भुला दिया जाता है कि ऐसे सारे प्रपचों में हमारा खुद का भी कुछ-न-कुछ स्वार्थ रहता है । परन्तु चूँकि बहुत से लोग ऐसा करते हैं, बडे-बड़े भी करते हैं जो समाज में प्रतिष्ठित माने जाते हैं और ऐसे व्यवहारों से उनकी

प्रतिष्ठा को कोई आँच नहीं लगती, तब उसके समर्थन में कुछ अच्छा-सा नाम भी दे दिया जाता है। 'व्यावसायिक ईमानदारी' (Professional Honesty) एक ऐसा ही शब्द-प्रयोग है।

आटे में नमक जितना असत्य

इस सारी परम्परा के कारण ऐसा कुछ खयाल हो गया है कि आटे में नमक की तरह कुछ असत्य कर लेने में दोष नहीं है। परन्तु किस मौके पर असत्य का आश्रय लिया जाय और किस मौके पर नहीं, इसका निर्णय कौन करे ? व्यक्ति खुद ही निर्णय करता है और उसमें अपना स्वार्थ होने के कारण वह अपने अनुकूल ही निर्णय कर लेता है। इस प्रकार दोष का समर्थन होने से दोष बढ़ता जाता है और व्यक्ति नीति से गिरता जाता है। अंत में आटे मे नमक के बदले सारा द्रव्य ही नमकमय बन जाता है और हमारे सत्यासत्य का विवेक लुप्त हो जाता है।

हम अपनी दुर्बलता स्वीकार करें

दोष के समर्थन के बदले हमारी विचार-सरणी उससे उल्टी होनी चाहिए। अगर व्यवहार चलाने में दुस्तर कठिनाइयाँ आती हैं और हम अपने को उनका मुकाबला करने में असमर्थ पाते हैं, तो हमे यह मानना चाहिए कि सत्व का सिद्धान्त तो सही है, परन्तु उसका जो आचरण नहीं हो रहा है, वह हमारी दुर्बलता है। किसी भी परिस्थिति मे उसका समर्थन करना हमारा ही दोष है। गलती होती है, पर वह फिर से न हो, ईश्वर बल दे कि हम सत्याचरण पर दृढ़ रहें, इस प्रकार कमजोरी कबूल करने मे हमारे और समाज के सुधरने की आशा है। धीरे धीरे बल बढ़ेगा और असत्य कम होता जायगा। अगर हम कमजोरी का समर्थन करते रहते हैं, तो

सुधरने की आशा नहीं रह जाती और आत्मवंचना इतनी बढ जाती है कि हम नीचे गिरते जाते हैं। इतना ही नहीं, समाज का अकल्याण कर पाप के भागी भी बनते हैं। हममें यह दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए कि तात्कालिक कुछ नुकसान भी होता दीखे, तो भी अन्त में सत्याचरण लाभदायक ही है। जो व्यक्ति सत्य का अनुसरण करने की कोशिश करता है, उस पर लोगों का विश्वास जमता है, और उससे अन्त में लाभ ही होता है। पारस्परिक सम्बन्धों में विश्वास का बड़ा मूल्य है। जिन्होंने दृढ़तापूर्वक ईमानदारी से अपना काम चलाया है, वे इस बात के साक्षी हैं कि व्यावसायिक कामों में ईमानदारी का फल मिलता ही है। सामाजिक कामों में तो इसमें कोई शका होनी ही नहीं चाहिए। अगर सत्य में इतना बल न होता तो सत्य पर जोर दिया जाना कब का ही बन्द हो जाता। संकीर्ण दृष्टि से, हमारे अज्ञानवश उसका लाभ भले ही न दीखे, परन्तु अन्त में सत्य की विजय होती ही है। "सत्यमेव जयते।" जितनी हद तक हमारी कमजोरी हटेगी, उतना ही हम उसका महत्त्व अधिक पहचान सकेंगे।

'एकहिं साधे सब सधे'

शास्त्रों ने और संत-पुरुषों ने अनेक सद्गुण गिनाये हैं। श्रीमद्-भगवद्गीता में भी उनकी नामावली कई जगह आती है। दूसरे और भी अनेक सद्गुण उनमें जोडे जा सकते हैं। समाज के कल्याण के लिए और व्यक्ति के भी हित में इन सद्गुणों का विकास आवश्यक है। परन्तु इनमें से हरएक का अलग-अलग विकास करना पड़ता हो, सो बात नहीं है। मनुष्य का अंतःकरण एक ही होता है। उसमें शुद्धि-अशुद्धि, सद्गुण-दुर्गुण दोनों का निवास एक साथ नहीं रह सकता। मनुष्य की चित्तवृत्ति में कभी-कभी कुछ फर्क जरूर होता है, परन्तु

साधारण प्रवाह एक-सा चलता है। सद्गुणों का विकास समझ-बूझकर प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए। अभ्यास के लिए किसी एक सद्गुण पर अगर जोर देंगे तो दूसरे भी उसके साथ अवश्य आवेंगे। उनकी मात्रा मे भले ही फर्क रह जाय, परन्तु गुण की दृष्टि से फर्क नही रहेगा। ईश्वर की कृपा से अगर छुटपन में ही सत्संग मिल जाय, चाहे वह उत्तम पुरुषो का हो या सद्ग्रंथो का, तो सद्गुण का विकास आसानी से होता है। बुरी संगति के या बुरे संस्कारो के कारण जो कमजोरियाँ प्रवेश कर जाती हैं, उन्हें हटाना कुछ मुश्किल होता है। परन्तु पुरुषार्थ क्या नहीं कर सकता ? अगर श्रद्धा और दृढ़ संकल्प हो तो बुराई हटकर अच्छाई आती है। कभी-कभी विफलता दिखाई दे तो भी अंत मे परिणाम अच्छा ही आयगा। आदमी का स्वभाव बुराईमय नही है और सुसंस्कार, सुसंगति तथा शुद्ध वातावरण पाकर बुराइयों का दूर होना कठिन नहीं होता। सद्गुणो में विकास के लिए अगर सत्य चुन लिया जाय, तो हमारी अनेक दिशाओं में प्रगति होगी और दूसरों से व्यवहार करने में भी शुद्धि आवेगी। सत्य की उपासना के अभाव में हमसे अनेक अशुद्ध-व्यवहार होते रहते हैं, जिनका कभी-कभी हमें पता भी नहीं चलता। सत्य के बारे मे जाग्रति न रहने के कारण असत्य की आदत-सी पड़ जाती है। अगर हमारी वृत्ति सत्यमय हो जाय, तो ये सारे दोष अपने-आप हट जाते हैं।

धर्म-विचार और अशुद्ध व्यवहार

हम हिन्दू लोग ऐसा कुछ मानते हैं और कुछ अभिमान भी रखते है कि अन्य धर्मवालो की अपेक्षा हिन्दू-जाति कुछ अधिक धर्मपरायण है। हमारे शास्त्रों में धर्म और तत्त्वज्ञान के ऊँचे-से-ऊँचे

विचार हैं। ईश्वर-कृपा से अन्य देशों की अपेक्षा भारत में साधु-संतों की संख्या हजारों वर्षों में लगातार अधिक रही है। हमारी संस्कृति का जोर, भौतिक सुख-सुविधाओं की अपेक्षा आध्यात्मिकता पर और भोग की अपेक्षा त्याग पर ज्यादा है। सर्वसाधारण अपढ़ व्यक्ति की जबान पर भी इन गुणों के निर्देशक वाक्यों की छाप पायी जाती है। धर्म के नाम पर देह तक अर्पण करनेवाले तथा कठोर तपश्चर्या करनेवाले अनेक हो गये हैं और अब भी हैं। फिर भी यह प्रश्न रह जाता है कि क्या व्यवहार में दूसरे देशों की अपेक्षा सर्वसाधारण भारतीय जनता की नीति ऊँची है? इसका उत्तर "हाँ" में देना मुश्किल है। अगर हम अधिक धर्मपरायण हैं तो व्यवहार में वह धर्म प्रकट होना चाहिए। क्या धर्म केवल किताबों में या अपने दिमाग में रखने की चीज है? अगर सचमुच में धर्म के प्रति हममें श्रद्धा है तो वह प्रत्यक्ष करनी में उतरनी ही चाहिए। हमारे सब व्यवहारों में शुद्धि आनी चाहिए। क्या धर्म-विचार के साथ अशुद्ध व्यवहार रह सकता है?

धर्म और शुद्ध व्यवहार एक ही बात

हम अपने जीवन की ओर दो दृष्टियों से देख सकते हैं, हालाँकि वे दोनों परस्परावलंबी हैं। एक खुद के संबंध में और दूसरे अन्य लोगों के सम्बन्ध में, जिनके साथ हमारा संबंध आता है। खुद के संबंध को लेकर हमारे जीवन की सार्थकता किस बात में है? अन्य जीवों की अपेक्षा मनुष्य में बहुत कुछ विशेष है। वह अपने दोषों को कम करके अनेक गुण हासिल कर सकता है। इसे हम चित्त-शुद्धि कहते हैं। इसके लिए शास्त्रों में अनेक साधनाएँ बतायी गयी हैं। इन्द्रियाँ और मन काबू में रखकर मन में विकार

खड़े न होने दें तथा काम-क्रोधादि बुराइयों से बचें। शास्त्रों में यह भी बताया गया है कि साधना करके मनुष्य परमपद को पहुँचे। शायद ऐसा दिखाई दे कि आत्म-साधना की दृष्टि से मनुष्य का व्यवहार से संबंध नहीं आता। जो संसार छोड़कर एकांत में चले जाते हैं, उनकी बात अलग है। उनको भी अपने खाने-पीने की व्यवस्था तो करनी या करानी ही पड़ती है। इस कारण दूसरों से थोड़ा-बहुत संबंध आ ही जाता है। परन्तु सामान्यतः मनुष्य अकेला नहीं रहता। वह सामाजिक प्राणी है। उसका विकास समाज की मदद पर ही अवलंबित है। वह अपने शरीर-पोषण के साधन भी समाज से ही पाता है। विद्या, कला आदि समाज से ही सीखता है। उसे आध्यात्मिक साधन भी साधु-संतों से ही मिले हैं। इस तरह उसका दूसरों से व्यावहारिक संबंध कदापि टल नहीं सकता। अतः समाज के प्रति अपना कर्तव्य अदा करने के लिए उसे अपने अंतःकरण की शुद्धि के साथ-साथ समाजोपयोगी सद्गुणों का विकास भी करना चाहिए, जैसे प्रेम, सत्य, दया, सेवा-वृत्ति आदि। धर्म जैसे खुद के लिए है, वैसे वह सारे समाज की धारणा के लिए भी है। अपनी खुद की धार्मिक वृत्ति और दूसरों से व्यवहार, इनमें भेद हो ही नहीं सकता। जैसे कुछ लोग घर में उपयोग के लिए एक तरह की पोशाक रखते हैं और बाहर के लिए दूसरी तरह की। इस तरह का भेद खुद की धार्मिक वृत्ति में, और दूसरों के साथ किये जानेवाले व्यवहार में नहीं हो सकता। एक ही घर में शायद भले और बुरे, दोनों प्रकार के लोग रह लें। लेकिन एक ही दिल में खुद के लिए भलाई और दूसरों के लिए बुराई, अंतःकरण के लिए शुद्धि और बाहर के व्यवहार के

लिए अशुद्धि यानी द्वैतनीति कैसे रह सकती है ? जो भीतर होता है, वही बाहर प्रकट होना चाहिए। जो बाहर प्रकट होता है, उसका असर दिल पर होता ही है। धर्म कहता है कि एक ही ईश्वर ने सबको बनाया है। सब भाई-भाई हैं। आपस में प्रेम रखो। भूत-मात्र का हित साधो। स्वार्थी न बनो। दूसरों के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानो। "घट घट में वह साईं रमता।" अपने जैसी ही आत्मा दूसरों में है। अगर इन बातों में हमें विश्वास है तो दूसरों के प्रति किये जानेवाले व्यवहार मे अशुद्धि कैसे टिक सकती है और उसमें भ्रष्टाचार के लिए स्थान कहाँ ? हमें इस निर्णय पर आना चाहिए कि धर्म और शुद्ध-व्यवहार एक ही बात है। अगर व्यवहार में अशुद्धि है, तो हमारा धर्माचरण उतना ही कमजोर है और जितनी मात्रा में हममे अशुद्धि है, उतने ही हम अधार्मिक हैं।

पाप-पुण्य का हिसाब

कुछ लोगों ने भोलेपन से ऐसा कुछ मान रखा है कि मंदिर, तीर्थ, देवदर्शन, पाठ-पूजा, भजन-कीर्तन, नाम-स्मरण, दान-धर्म आदि बाह्य उपचार कर लेने मात्र से धर्म की उपासना हो जाती है, सांसारिक व्यवहार में धर्म का संबंध लाने की जरूरत नहीं। एकाध घंटा ऐसे कामों में बिताने पर बाकी के तेईस घंटे चाहे जैसा करने में हर्ज नहीं। कहीं-कहीं तो यह भी समझ लिया गया है कि जिस प्रकार नफे में नुकसान या देने में लेना बाद किया जा सकता है, उसी प्रकार पाप-पुण्य का भी हिसाब हो सकता है, व्यवहार में किये हुए पाप दान-धर्म, पूजा-पाठ आदि से धुल सकते हैं। इस विचार में आत्म-वंचना और धर्म की प्रतारणा है। यह एक प्रकार से ईश्वर को ठगने जैसा ही है।

'हरिनो मारग छे शूरानो'

हम ईश्वर का दर्शन करना चाहते है, पर वह कहाँ होगा ? यह तो सब शास्त्र कबूल करते हैं कि वह मन-बुद्धि-इन्द्रियो के परे है। हम उसका दर्शन उसके बनाये हुए विश्व में ही कर सकते हैं, विशेषकर अपने जैसे ही आकार-प्रकार, सुख-दुख की भावनावाली मनुष्य-जाति में।

"मूरति धोय अन्हवाय विंजन लै भोग लगाई,
साच्छात भगवान द्वार से भूखा जाई,
पूजै आतमदेव, खाय और बोलै भाई··· "

अगर हम दूसरे लोगो के साथ छल-कपट करते हैं, तो वह समाज-द्रोह के साथ-साथ मनुष्य में बसे हुए ईश्वर का भी द्रोह है। व्यवहार-शुद्धि का इतना महत्त्व होते हुए भी अगर भ्रष्टाचार चलता है और कायम रहता है तो हिन्दू जाति का दूसरों की अपेक्षा अधिक धर्मपरायण होने का दावा टिक नहीं सकता।

बहुत-कुछ संभव है कि धर्म-मार्ग से चलते हुए हमें अनेक कठिनाइयो का मुकाबला करना पड़े। पर सच्चा पुरुपार्थ उसीमे है और हमारी मानवता की कसौटी भी। यो ही हमें अपने जीवन-काल में अपने शरीर-सम्बन्धी तथा परिवार-सम्बन्धी अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं, तब हमारे कल्याण का एकमात्र आधार जो धर्म है, उसी पर हम दृढ़ क्यो न रहे ? "हरिनो मारग छे शूरानो।" ● ● ●

तीसरा अध्याय

सूक्ष्म असत्य

सेवाग्राम-आश्रम में महात्माजी की कुटी में दीवार पर एक तख्ती टँगी है, जिस पर रस्किन का यह वाक्य लिखा है :

"The essence of lying is in deception, not in words, a lie may be told by silence, by equivocation, by accent on a syllable, by a glance of the eye attaching a peculiar significance to a sentence; and all these lies are worse and baser by many degrees than a lie plainly worded"

—"असत्य बोलने का मर्म धोखा देने में है, न कि शब्दों में। असत्य बोला जा सकता है मौन से, कूट भाषा से, एक शब्द पर जोर देने से, वाक्य को विशेष अर्थ मिले, ऐसे आँख के इशारे से। ये सब असत्य स्पष्ट शब्दों में कहे गये असत्य की अपेक्षा कई गुना अधिक बुरे और हेय है।"

सत्य और अहिंसा का पालन

महात्मा गान्धीजी के नीचे लिखे विचारों का भी हमें ध्यानपूर्वक मनन करना चाहिए :

"जो बात अहिंसा की है, वही सत्य की समझिए। गाय को बचाने के लिए झूठ बोला जा सकता है या नहीं, इस उलझन में पड़कर अपनी नजर के नीचे जो रोज हो रहा है, उसको भूल जायँ, तो सत्य की साधना न हो सकेगी। यों गहरे पानी मे पैठना सत्य को ढाँकने का रास्ता है। तत्काल जो समस्याएँ रोज हमारे सामने आकर खड़ी हो रही है, उनमे हम सत्य का पालन करें तो कठिन अवसरों पर क्या करना होगा, इसका ज्ञान हमे अपने आप हो जायगा।

"इस दृष्टि से हममें से हरएक को केवल अपने आपको ही देखना है। अपने विचार से मैं किसीको ठगता हूँ? अगर मैं 'ब' को खराब मानता हूँ

और उसको बताता हूँ कि वह अच्छा है, तो मैं उसे ठगता हूँ। बड़ा या भला कहलाने की इच्छा से जो गुण मुझमें नहीं है, उन्हे दिखाने की कोशिश करता हूँ ? बोल्ने मे अतिशयोक्ति करता हूँ ? किये हुए दोष जिसको बता देने चाहिए, उससे छिपाता हूँ ? मेरा साथी या अफसर कुछ पूछता है, तो उसके जवाब मे बात को उडा देता हूँ ? जो कहना चाहिए, उसे छिपाता हूँ ? इनमें से कुछ भी करते है, तो हम असत्य का आचरण करते है। यों हरएक को रोज अपने आपसे हिसाब लेकर अपने आपको सुधारना चाहिए। जिसको सच बोल्ने की आदत पड गयी हो, ऐसी स्थिति हो गयी हो कि असत्य मुँह से निकल ही न सके, वह भले ही अपने आपसे हिसाब न माँगे, पर जिसमें लेशमात्र भी असत्य हो, या जो प्रयत्न करके ही सत्य का आचरण कर सकता हो, उसे तो ऊपर बतायी हुई रीति से यही या इस तरह के जितने सूझे, उतने सवालों का जवाब रोज अपने आपको देना चाहिए। यों जो एक महीना भी करेगा, उसे अपने आपमें हुआ परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देगा।"

इस अध्याय के शीर्षक के शब्द कुछ विलक्षण है। "सूक्ष्म असत्य"[1] शब्द मुझे महात्माजी से मिला। मै चाहता हूँ कि यह 'सूक्ष्म असत्य' शब्द चल पड़े। एक भाई दूसरों से अपने हाथ-पैर दबवाया करते थे, जो उचित नहीं था। पूछने पर उन्होने बताया कि मेरी इच्छा न होते हुए भी मेरे हाथ-पैर दबाये जाते हैं। महात्माजी ने कहा, "इन भाई के ध्यान में यह बात नहीं आयी कि यह बात कहते हुए सूक्ष्म असत्य हो रहा है। अगर इच्छा न हो तो रोज रोज हाथ-पैर कैसे दबाये जा सकते ? दृढ़तापूर्वक एक बार मना करने पर दबाना बंद हो ही जाता।"

---

१. जैन-आचार मे सत्यव्रत को अणुव्रत और महाव्रत के रूप मे माना गया है। 'अणु' का अर्थ है, एकदेशीय पालन, स्थूल पालन। और 'महा' का अर्थ है, सर्वदेशीय पालन, सम्पूर्ण पालन। सुविधा के लिए हम कह सकते है कि जो 'स्थूल सत्य' गृहस्थों के लिए कहा गया है, उसमे 'सूक्ष्म असत्य' भी शामिल हो जाता है।

'सूक्ष्म असत्य' शब्द

असत्य के पीछे सूक्ष्म विशेषण लगाने से यह खयाल होना स्वाभाविक है कि असत्य सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार का हो सकता है। क्या सचमुच असत्य के ऐसे कुछ भेद हैं या वे किये जा सकते हैं? असत्य व्यवहार करनेवाले की दृष्टि से तो कोई भेद नहीं दीखता, क्योंकि व्यक्ति स्वय जान सकता है कि वह असत्य व्यवहार कर रहा है या नहीं, दूसरो के खयाल मे वह असत्य आये या न आये, या देर से आये।

फिर भी ऐसे कुछ उदाहरण हो सकते हैं कि स्वयं व्यक्ति को भी पता नहीं चलता कि मैं असत्य कर रहा हूँ या नहीं। मनुष्य में अपूर्णता है, अज्ञान है, कई बातों में उसका ज्ञान अधूरा है, गलतफहमी भी रहती है और वह सदा सावधानीपूर्वक सोचता भी नहीं। हर बात में सूक्ष्मता और स्थूलता रहती ही है। विशेषकर मन की प्रक्रियाएँ सूक्ष्म होती हैं। जहाँ तक हमारी दृष्टि स्थूल है, हम मोटे-मोटे दोष ही देख सकते हैं और उन्हें मिटाने का प्रयत्न कर सकते हैं। उतना हो जाने पर भी बाद में दीखता है कि अन्दर छिपे हुए कितने ही सूक्ष्म दोष पडे हैं। जब तक उन सबका निराकरण नहीं होता, तब तक पूरी शुद्धि नहीं हो पाती और हर व्यवहार की छानबीन किये बिना अशुद्ध व्यवहार टल नही सकता। इसलिए प्रत्येक बात के बारे में हमें सूक्ष्म दृष्टि से सोचते रहना चाहिए।

सूक्ष्म असत्य के प्रकार

मैं सूक्ष्म असत्य की व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। वह काम मेरी शक्ति के बाहर है। हाँ, मैं यह जरूर चाहूँगा कि कोई विद्वान

वह काम करे। फिर भी मोटे रूप में इस निमित्त से इन बातों का विचार होना चाहिए। मैं जिसे सत्य समझता हूँ, हो सकता है कि वह असत्य ही हो, और दूसरे जिसे असत्य समझते हैं, मैं उसे असत्य न समझता होऊँ, सत्य और असत्य के विषय में शंका हो, मैं तो जानता हूँ कि असत्य है, लेकिन दूसरे नहीं जान सकते या दूसरों से छिपाने की कोशिश करता हूँ; सचमुच मे असत्य है, परन्तु बहुत समय से करते आये, दूसरे लोग भी करते हैं, अर्थात् अब व्यावहारिक दृष्टि से वह असत्य माना ही नहीं जाता, इसलिए उसमे कोई दोष नहीं दीखता, किसीकी विशेष हानि नहीं है, ऐसा समझकर असत्य कर लिया जाता है, पैसे-टके का या व्यवहार का सम्बन्ध नहीं आता, केवल दिल-बहलाव के लिए किया जाता है; बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग करते हैं, इसलिए उस असत्य को प्रतिष्ठा मिल गयी है। इस तरह सूक्ष्म असत्य के अनेक प्रकार हो सकते हैं। इस अध्याय में कुछ उदाहरण दिये गये हैं। इन उदाहरणों से सूक्ष्म असत्य सम्बन्धी आशय कुछ स्पष्ट होगा। किसी समाज या व्यक्ति को दोष देने का या किसीकी निन्दा करने का बिल्कुल इरादा नहीं है।

व्यक्ति का अनेक लोगों से संबंध आता है। लोगो की और पेशो की संख्या भी कम नही। व्यवहार भी असंख्य होते हैं। अशुद्धि के उदाहरण भी असंख्य और विविध हैं। उनकी कोई कल्पना देना भी असंभव है। इसलिए कुछ थोड़े-से ही उदाहरण, जो अपने-आप बिना विशेष सोचे-विचारे खयाल में आये, उनका ही उल्लेख यहाँ किया है। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि दोषो की तरह गुण भी अनंत हैं। अशुद्ध व्यवहार चल रहे है, तो शुद्ध

व्यवहार भी चल रहे हैं। इसलिए निराश होने या घबराने की बात नहीं है। प्रयत्नपूर्वक जितनी अशुद्धि कम की जा सके, करनी चाहिए।

बेमतलब का असत्य

कई बार हम बिना कारण ही असत्य करते रहते हैं, जिसका शायद हमें भान ही नहीं होता या जिसमें हमें दोष नहीं दीख पडता। दूसरों की नजर में हम जैसे हैं, उसकी अपेक्षा अधिक अच्छे दीखें, इस निमित्त से हमारी बोलचाल और अनेक काम ऐसे होते रहते हैं, जिसमें न्यूनाधिक असत्य और दिखावा रहता है। बहुत बार तो इसकी आवश्यकता भी नहीं रहती। जिनके सामने ये क्रियाएँ होती हैं, उनसे कुछ लाभ उठाने की मन्शा भी नहीं रहती। स्वभाव ही ऐसा कुछ बन जाता है कि हमारे व्यवहार में असलियत न रहकर कृत्रिमता आ जाती है। किसी बात के लिए हमारा मत जैसा अनुकूल या प्रतिकूल रहता है, वैसा उस बात के वर्णन में रंग चढ़ जाता है। जिस व्यक्ति से हम बोल रहे होंगे या जिससे हम व्यवहार कर रहे होंगे, उसको देखकर भी हमारे आचरण में फर्क पड़ जाता है। घर में व्यवहार एक प्रकार का, दूसरों के घर पर दूसरी तरह का, मेहमानों के सामने तीसरी तरह का, इस प्रकार जीवन स्वाभाविक न रहकर कृत्रिम बन जाता है। यह बात नहीं कि इसमें कोई विशेष हानि-लाभ है। फिर भी स्वाभाविकता और कृत्रिमता में जो फर्क है, वह तो है ही।

पू० विनोबाजी का बताया हुआ एक किस्सा ध्यान में रखने योग्य है। एक बार कवींद्र श्री रविबाबू साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम में आनेवाले थे। जब इतने बड़े मेहमान आते हैं, तो स्वाभाविक रूप से सब व्यवस्था ठीक ठाक कर ली जाती है। बहु-

तेरों ने अपने रहने के स्थान आदि ठीक-ठाक कर लिये और सारी चीजें व्यवस्थित जमा लीं। परन्तु विनोबाजी ने कहा कि मैंने कुछ भी विशेष नहीं किया। सदा साफ, स्वच्छ, व्यवस्थित रहना अच्छा है और सदा वैसे ही रहना चाहिए। वैसा रहने की कोशिश तो चलती ही है। अगर उसमें कुछ त्रुटि रहती है, तो उसे मेहमान भी देख लें, उनको कोई चीज दूसरी तरह से बताने की क्या आवश्यकता है? यही अच्छा है कि हम जैसे हैं, वैसे ही हमको वे देखें।

हँसी-मजाक में असत्य

खेल-कूद, हँसी-मजाक में असत्य को स्थान देने में दोष नहीं माना जाता। इसमें शायद इस बात का आधार मान लिया गया है कि किसीको नुकसान पहुँचाने का इरादा नही रहता है या कोई हानि-लाभ नहीं है। शायद शुद्ध और अशुद्ध व्यवहार की कसौटी यह मान ली जाती है कि जिसमे खुद का कुछ गैरवाजिब लाभ हो या दूसरो की गैरवाजिब हानि हो, उसे ही अशुद्ध व्यवहार समझा जाय। जिसमें इस प्रकार का हानि लाभ नहीं है, उसे अशुद्ध क्यों मानें? मोटे रूप में यह ठीक दीखता है। कानून की मर्यादा भी वहीं तक पहुँचती है। परन्तु कानून तो बाह्य आचरण का ही नियंत्रण कर सकता है। अंतःकरण की शुद्धि तक वह नहीं पहुँचता। हमें तो अंतःकरण की शुद्धि तक पहुँचना है। क्या हँसी-मजाक, खेल-कूद पूरी सचाई के साथ नहीं हो सकते? मन को पूरा आह्लाद देने लायक ऊँचे दर्जे का विनोद ठीक सचाई के साथ हो सकता है और वह हमारी सभ्यता और सुसंस्कृति की निशानी है। परन्तु किसीको ठगना नहीं है, इस बहाने हम असत्य आचरण में दोष नहीं समझते।

बच्चों के साथ असत्य

बच्चों के साथ तो हम बहुत कुछ असत्य-व्यवहार करते रहते हैं। एक प्रकार से हम ही उनको असत्य सिखाते रहते हैं। कभी-कभी बच्चा किसी चीज या बात का आग्रह कर लेता है। अगर उसे वह चीज न देनी हो या उसकी चाही बात न करनी हो, तो हम साफ-साफ कह सकते हैं कि ऐसा नहीं होगा। थोड़े ही समय में उसका आग्रह शांत हो जायगा। आग्रह को न निभते देख धीरे-धीरे उसका आग्रह करने का स्वभाव भी छूट जायगा या मंद पड़ेगा, परंतु अक्सर हम उसकी बात टालने के लिए, आगे कभी करेंगे आदि कहकर कोई बहाना बता देते हैं। कुछ समय तक बालक हमारी बात पर भरोसा करता है, क्योंकि उसका हम पर पूरा विश्वास होता है। परन्तु धीरे-धीरे बालक जब देखता है कि उसको दिये हुए वचनों का पालन नहीं होता है, तो वह हमारी बात पर विश्वास करना छोड़कर ज्यादा आग्रह करने लगता है। साथ-साथ वह यह भी सीख लेता है कि जब बुजुर्ग झूठी बात कहकर बहाना कर सकते हैं, तो मैं भी वैसा ही क्यों न करूँ ?

अगर हम इतना सा ही निश्चय कर लें कि कम से कम बिना कारण असत्य व्यवहार नहीं करेंगे, तो हम जितना भी असत्य व्यवहार करते हैं, उसका ५० प्रतिशत अंश अपने-आप घट जायेगा और इसी वृत्ति के कारण, सकारण असत्य की भी मात्रा कम से कम रह जायगी। पर यह तो तब होगा, जब हममें सत्य-निष्ठा हो।

स्कूल-कॉलेजों में

बालक बड़ा होने पर स्कूल-कॉलेज में पढ़ने के लिए जाता है। ये संस्थाएँ सरस्वती के मन्दिर हैं, उनमें अशुद्ध-व्यवहार के लिए स्थान

कहाँ ? वहाँ कोई सांसारिक व्यवहार नहीं चलता, केवल परमार्थ की बात है। फिर भी ऐसी बात तो नहीं है कि वहाँ गड़बड़ी चलती ही नहीं। परीक्षाएँ पास करने की दौड़ मे कई लोग अनेक बेजा उपायो का अवलम्बन करते हैं। गैरहाजिरी के चाहे जैसे कारण बताये जा सकते हैं। जहाँ अमुक दिन की उपस्थिति लाजिमी है, वहाँ कभी-कभी बिना उपस्थित रहे भी दूसरो के द्वारा हाजिरी लग सकती है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध व्यावहारिक-सा हो गया है, आध्यात्मिक तो शायद ही पाया जायगा। जहाँ छात्रों को प्रवेश देने की संख्या मर्यादित होती है, वहाँ किसको प्रवेश मिले और किसको नहीं, यह एक जटिल समस्या बन जाती है।

परोपकार के लिए अशुद्धि

सरकारी विद्यालयो के अलावा कई खानगी विद्यालय भी चलते है, जिन्हे सरकार आर्थिक मदद देती है। इन विद्यालयो के संचालक विद्यालय का काम, समाज में विद्या-प्रसार के हेतु सार्वजनिक सेवा समझकर करते हैं। शायद कीर्ति के अलावा उनका निजी कोई स्वार्थ नहीं होता। वे अपना समय देते हैं, खुद आर्थिक मदद करते हैं और दूसरो से भी मदद प्राप्त करने का कष्ट उठाते हैं। पर इस परोपकार के काम में भी अशुद्धि टलती नहीं। सरकारी मदद देने के कुछ नियम होते हैं। फिर भी इस बात पर जोर नहीं रहता कि नियमों के अनुसार ही न्याय्य हिस्सा प्राप्त करने की कोशिश हो। कई बार हिसाब इसलिए गलत रखे जाते हैं कि अधिक-से-अधिक ग्रांट मिले। सरकार भी इससे अनजान नहीं रहती। बेजा ग्रांट न जावे, इसलिए वह भी नाना प्रकार के कड़े नियम बनाती है। पर उनसे भी बचने का कोई-

न-कोई रास्ता निकाल लिया जाता है। इन संस्थाओं के संचालक बड़े प्रतिष्ठित और संस्थाओं की दृष्टि से निःस्वार्थी होते हैं। तब इसमें दोष मानने का साहस कौन करे ?

विद्यार्थी चुनाव के चक्कर में

आजकल कॉलेजों में विद्यार्थियों के संघ बनने लगे हैं। उनमें चुनाव-पद्धति दाखिल की गयी है। दूसरे चुनावों में जो दोष हैं, वे विद्यार्थियों के जीवन में भी प्रवेश पाने लगे हैं। किसी प्रकार चुनाव में जीतना, दल-बन्दी में फँसना, अधिकार के सदुपयोग या दुरुपयोग का खयाल न रखना, अपना पद कायम रखने के लिए तिकड़मबाजी आदि दोष दाखिल होते हैं। हम सोचें कि विद्यार्थी-दशा में ही ये बातें सीख लेने पर आगे चलकर इसका कितना अनिष्ट परिणाम हो सकता है। परन्तु किया क्या जाय ? जो कुछ समाज में चलता है, उससे विद्यार्थी कैसे बच सकता है ?

डिबेट पद्धति

जनतंत्र की राज्य-पद्धति में वक्तृत्व की आवश्यकता है। कुछ वर्षों पहले उसे उत्तेजन देने के लिए विद्यार्थियों के भाषण कराकर उनको इनाम बाँटे जाते थे। आजकल 'डिबेट' यानी वाद-विवाद की पद्धति शुरू हुई है। कोई एक विषय मुकर्रर किया जाता है। कुछ विद्यार्थी उसके पक्ष में और कुछ विपक्ष में बोलते हैं। यह डिबेट की पद्धति विद्यार्थियों के सिवा दूसरे क्षेत्रों में भी चलती है। ऐसे अनेक विषय सोचे जा सकते हैं, जिनमें सचमुच में पक्ष और विपक्ष, अर्थात् मतभेद हों, और जिसका जो सच्चा मत हो, उसीके अनुसार वक्ता समर्थन या विरोध करें। परन्तु विषय विवादास्पद है या नहीं, इसकी परवाह न कर कोई भी विषय रख दिया जाता है और वक्ताओं के

निजी मत का भी खयाल न कर कुछ को पक्ष में, कुछ को विपक्ष में बोलने को कह दिया जाता है। कुछ वक्ता तो अपना भाषण यह कहकर ही शुरू करते हैं कि मेरा निजी मत तो भिन्न ही है, परन्तु चूॅकि मुझे एक पक्ष मे बोलना है, इसलिए उसीका समर्थन करता हूॅ, और जब वक्तृत्व 'कला' का प्रदर्शन करना है तो उसके समर्थन में गलत दलीलें देकर भी अपनी कला जोरो से प्रकट करनी पड़ती है। प्रायः सभी डिबेटो में बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग भी ऐसा करते हैं। कौन किसको दोष दे? इसमे सूक्ष्म असत्य है या नहीं, यह भी शंका हो सकती है। प्रायः यह प्रणाली पार्लमेंटरी-पद्धति के काम-काज के अनुरूप गुण का विकास करने के लिए अपनायी गयी दीखती है, या अभी जो पार्लमेंटरी तरीका चल रहा है, उसका यह अनुकरण है।

विधान-सभाओं में

विधान-सभाओं का काम बहुत गंभीर है। वहाॅ जो कुछ होता है, उसका असर करोड़ो लोगों के जीवन पर पड़ता है। विधान-सभा मे दो पक्ष रहते हैं, एक सरकारी और दूसरा विरोधी। वहाॅ जो कुछ चलता है, उस पर से कभी-कभी ऐसा लगता है कि विरोधी पक्ष ऐसा मानता दीखता है कि अगर विरोध न हो तो वैसे पक्ष का अस्तित्व ही बेकार है। ऐसा कुछ मान लिया गया दीखता है कि सरकारी योजना का, चाहे वह भली हो या बुरी, विरोध न करना उचित नहीं है। ऐसी दशा मे बहस में ऐसी अनेक बातें कही जाती हैं, जिनका विवेक की दृष्टि से या सचाई की दृष्टि से समर्थन नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर कभी-कभी सरकार भी अपनी प्रतिष्ठा मे अड़ कर विरोधी पक्ष को उसी तरह का जवाब देती है। प्रत्यक्ष मत देने

में तो पक्ष का सदस्य बँधा ही रहता है। उसके खुद के विवेक के या सच्चे मत के लिए स्थान नहीं। यह सब ठीक होता है या नहीं, इसका यहाँ जिक्र करने की जरूरत नहीं है। सूक्ष्म असत्य अपना क्रिया-कांड किस तरह रचता है, इसका खुलासा करने की दृष्टि से इस बात का उल्लेख करना पड़ा। बड़ी गंभीर बात है। देश की अत्युच्च संस्था में, बहस के लिए ही क्यों न हो, सत्य का अपलाप होता है। यह बडी खतरनाक बात है। चुनावों में क्या होता है, इसके बारे में तो लिखना ही व्यर्थ है। कुछ अपवाद छोड़ दें तो सत्य, विवेक और न्यायनीति के लिए वहाँ कोई स्थान ही नहीं दीखता। आत्म-प्रशसा और पर-निंदा, जो सामान्य-नीति में बड़े दोष माने जाते हैं, उनका वहाँ अतिरेक होता है। समाज की नीतिमत्ता गिराने मे ये पद्धतियाँ कितने बड़े साधन बनती होंगी!

प्रमाण-पत्र और सिफारिश-पत्र

आजकल प्रमाण-पत्र और सिफारिश-पत्र का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। व्यवहार में बहुत से अपरिचित लोगों से काम लेना पड़ता है। प्रत्यक्ष परिचय का मौका बहुत थोड़ा मिलता है। इसलिए प्रतिष्ठित लोगो के प्रमाण-पत्रों की जरूरत मानी गयी है। प्रमाण-पत्र किसी विशेष हेतु से नहीं दिया जाता, वह केवल व्यक्ति के गुण-दोष का निदर्शक होता है। सिफारिश-पत्र किसी विशेष हेतु से दिया जाता है कि उम्मीदवार को उससे कुछ लाभ मिल सके। आजकल यह बड़ी शिकायत सुनने में आती है कि नौकरी या काम काज केवल गुण के भरोसे ही मिलना मुश्किल है। प्रायः सिफारिशों का ही प्रभाव पड़ता है। सिफारिश करनेवाले या प्रमाण-पत्र देनेवाले और उनका विचार करनेवाले दोनों पर बड़ी जिम्मेवारी होती

है। जो वैसे प्रमाण-पत्र या सिफारिश-पत्र प्राप्त नहीं कर सकते, उनकी, गुणी होते हुए भी, कद्र नहीं होती। मनुष्य मे गुण-दोष दोनो रहते हैं। परंतु प्रमाण-पत्र मे कही दोष लिखे नहीं पाये जायँगे। प्रमाण-पत्र मे अगर काफी गुणो का वर्णन हो और थोड़े दोष का भी उल्लेख हो, तो शायद उतना-सा उल्लेख व्यक्ति के गुणो पर पानी फेर दे, इस भय से भी दोष का उल्लेख करना खतरनाक माना जाता है। स्वयं सिफारिश मे कुछ दोष हैं ही, क्योकि जिस अधिकारी को निर्णय करना पड़ता है, उसके सामने अनेक उम्मीदवार रहते हैं। गुण देखकर न्याय करना उसका धर्म है। अगर वह सिफारिश से प्रभावित होता है तो किसी-न-किसी दूसरे के प्रति अन्याय होता है। कुछ तो खुद के परिचय के बिना ही केवल मित्रो के कहने से या उम्मीदवार की याचना पर प्रमाण-पत्र या सिफारिश-पत्र दे देते हैं। वे शायद सोचते होंगे कि बेचारा उम्मीदवार कोई पैसा-टका तो माँगता नहीं, केवल दो शब्द ही चाहता है। लिख देने में कंजूसी क्यों की जाय? अथवा केवल अपने शब्द मात्र से किसीका भला होता हो, तो वह क्यों न होने दिया जाय? प्रमाण-पत्रों और सिफारिश-पत्रों के बारे मे इस प्रकार शिथिलता होने के कारण उनका महत्त्व ही घट गया है।

आलस और असत्य

आलस के कारण भी सत्य का अपलाप कम नहीं होता। जो काम जिस समय करना चाहिए, उसे उस समय न करने से बाद में उसके बारे मे संयोग बदल जाते हैं। बदली हुई परिस्थिति में वह बात ठीक बैठती तो नहीं, पर बैठानी पड़ती है। अभी कोई काम अधूरा रह जाय तो बाधा नहीं, आगे चलकर पूरा कर लेंगे, इस

आशा में हम असावधान रह जाते हैं। बाद में जब झूठ किये बिना वह पार नहीं पड़ सकता, तब बिना कारण और लाचारी से झूठ कर लेते हैं और यह समझकर संतोष मान लेते हैं कि इसमें हमने सचमुच किसीको ठगा नहीं है या किसीको हानि नहीं पहुँचाई है। जो असत्य करना पड़ा, वह तो नाम-मात्र का था। एक उदाहरण से हम इसे स्पष्ट करें।

दस्तावेजो पर गवाहों की साक्ष डालनी पड़ती है। कभी कभी दस्तावेज पर लिख देनेवाले के हस्ताक्षर हो जाते हैं। पहले साक्षदारों का स्मरण नहीं रहता। दस्तावेज का काम पूरा होने पर बाद में किन्हीं दो व्यक्तियों को लाने का प्रयत्न किया जाता है। वे मिल जाते हैं तब तो उनकी साक्ष डलवा ली जाती है और गवाह भी, बिना जाँच-पड़ताल किये सब कुछ ठीक हो गया होगा, मानकर अपने हस्ताक्षर कर देते हैं। कभी समय पर साक्ष के लिए ठीक व्यक्ति नहीं मिलते हैं तो बाद में लिख देनेवाले की गैरहाजिरी में भी किन्हींसे साक्ष डलवा ली जाती है। कई मामले आपस मे निपट जाते हैं और दस्तावेज बिना साक्ष के पड़े रहते हैं। परन्तु जब कभी अदालत में जाने का मौका आता है, तब उस पर साक्ष डलवाने की जरूरत हो ही जाती है। उस समय किसीको मुरव्वत में डालकर साक्ष डलवानी पड़ती है। कुछ भाई ऐसे मिल जाते हैं, जो यह समझकर कि किसी तरह का छल-कपट नहीं है, साक्ष डाल देते हैं। आगे चलकर जब अदालत में गवाह देने का मौका आता है, तब वह "ईमान से सच कहूँगा", ऐसा हलफ करके साफ झूठ बोल देता है कि लिखनेवाले ने दस्तावेज मेरे सामने पढ़कर समझ-बूझकर उस पर हस्ताक्षर किये। अभी नहीं तो आगे

चलकर इस प्रकार काम पूरा कर लेने में बाधा नहीं है, अर्थात् उसमें कोई सचमुच में असत्य नहीं है, ऐसा समझने से यह गड़बड़ी होती है। इसमे आलस्य के साथ यह भी एक दोष है कि इस प्रकार के असत्य को हम बुरा नहीं मानते। अदालतों के बारे में अब यह आम खयाल हो गया है कि वहाँ झूठ बोलने मे कोई दोष नही है। इतना ही नहीं, असत्य अदालती व्यवहार का एक अंग ही मान लिया गया है।

व्यावसायिक चालाकियाँ

अशुद्धि का बड़ा क्षेत्र व्यावसायिक व्यवहार है। उसमें भी हानि-लाभ की बात छोड़कर दूसरी अनेक बातें ऐसी हैं, जिनमें बिना कारण या केवल मोह-वश असत्य किया जाता है। हम अपनी होशियारी से चालाकी करते हैं, परन्तु दूसरे पक्षवाला भी हमारी चालाकी नहीं पहचान सकता, ऐसी बात नहीं है। फिर भी हम बुरी आदत नहीं छोड़ते। अपने माल की झूठी तारीफ करना तो क्षम्य ही माना जाता है। कम-ज्यादा मोल-तोल बताना मामूली बात हो गयी है। ग्राहक से भाव तय करने की झंझट मे कितना समय बर-बाद होता है, इसका कोई हिसाब नहीं। अनुभव तो यह है कि जहाँ बिक्री-दर निश्चित रहती हैं, जहाँ भाव में कमी-बेशी नहीं होती, वहाँ खरीददार का विश्वास अधिक बढ़ता है। ऐसा न होने की दशा में दूकानदार और ग्राहक, दोनों एक-दूसरे को ठगने की कोशिश करते रहते हैं। दिन-दहाड़े दूकान के सामने परदे डालकर कृत्रिम अँधेरा बनाकर, अन्दर बिजली की रोशनी इसलिए की जाती है कि चीजों का रंग-रूप अधिक आकर्षक दिखाई दे। चीज की वास्तविक उपयुक्तता न बढ़ाते हुए केवल दिखावे के लिए उस पर

कुछ खर्चीली प्रक्रियाएँ करके ग्राहक को ठगने की दृष्टि से उसे आकर्षक बनाने का प्रयत्न होता रहता है। झूठी विज्ञापनबाजी तो प्रसिद्ध ही है। अब तो उसे एक बड़ी कला का रूप मिल गया है। वाणिज्य के विद्यार्थियों को वह बाकायदा सिखायी भी जाती है। जो बात वास्तव में अशुद्ध है, उसे सुन्दर नाम देकर उसका एक बड़ा भारी विज्ञान खड़ा कर लिया गया है और चूँकि आम तौर से बड़े-बड़े लोग भी उसका आश्रय लेते हैं, इसलिए उसमें दोष भी नहीं माना जाता।

टैक्स न देने की वृत्ति

अशुद्ध व्यवहार का एक बड़ा भारी अड्डा 'टैक्स' है। सरकारी टैक्स हो या स्थानिक स्वायत्त संस्थाओं का, सर्वसाधारण का कुछ ऐसा ही खयाल दीखता है कि टैक्स देना टालने में अनीति नहीं है, इतना ही नहीं, बल्कि वह कुशलता और चतुराई की बात है। इन्कमटैक्स जैसे बड़े टैक्सों की बात छोड़ भी दें, क्योंकि उनमें बड़े हानि-लाभ का प्रश्न रहता है, तो भी छोटे-छोटे टैक्सों के बारे में भी हमारी वृत्ति प्रायः टैक्स देना टालने की ही होती है। ऐसे बहुत थोड़े लोग मिलेंगे, जो अगर पकड़े न जायँ तो स्वयं जाकर टैक्स चुका दें। इसलिए जगह-जगह टैक्स-वसूली के लिए चौकी रखनी पड़ती है। फिर भी चौकी कब तक कामयाब हो सकती है? टैक्स की चोरी बहुत-कुछ होती ही रहती है। अगर टैक्स अन्याय का है तो उसके खिलाफ खुल्लमखुल्ला लड़ना चाहिए, अन्यथा राज्य की या स्थानिक स्वायत्त-संस्थाओं की ओर से चलनेवाली सुविधाओं का लाभ उठाते हुए टैक्स देना टालने में ईमानदारी कैसे? म्युनिसिपल कमेटी के चुंगी जैसे टैक्स प्रायः छोटे पैमाने के होते हैं। व्यक्तिगत

रूप से बहुतों को कुछ आने मात्र ही देने पड़ते हैं, परन्तु हमारी इच्छा यही रहती है कि उतने से भी पैसे बच जायँ।

रेल्वे-प्लेटफॉर्म का टिकट एक आने का होता है। पर श्रीमान लोग भी ये चार पैसे बचाने मे संकोच नहीं करते। बहुत सी प्रदर्शनियाँ, खेल आदि की टिकटें आने दो आने की रहती हैं। परन्तु युवक लोग, उच्च शिक्षा पानेवाले विद्यार्थी भी बिना टिकट देखने की कुछ-न-कुछ हिकमत लड़ाते रहते हैं। यों तो व्यसनों मे हम कितना ही पैसा खर्च करते रहते हैं, परन्तु ऐसी छोटी-छोटी बातों में असत्य करने में नहीं हिचकिचाते। यह मानना ठीक नहीं होगा कि ऐसे दोष गरीब लोग ही करते हैं। बेचारे गरीब तो भय के कारण दोष करने की हिम्मत ही कम करते हैं। बड़े लोग कुछ निडर होते हैं। रेल्वे का एक नियम है कि बालक तीन वर्ष का हो जाने पर उसके लिए आधी टिकट और बारह वर्ष का हो जाने पर पूरी टिकट लेनी चाहिए। पालक को तो मालूम रहता ही है कि बालक की ठीक उम्र क्या है। परन्तु ऐसे कितने लोग होंगे कि जो तीसरा या बारहवाँ वर्ष पूरा होते ही दूसरे रोज से नियम के अनुसार पूरा टिकट लेते हों?

कुछ ऐसी अशुद्धियाँ होती हैं, जिनमे तुरन्त कोई कपट नहीं दिखाई देता, परन्तु आगे चलकर कपट करने मे वे मदद कर सकती हैं। एक वकील साहब ने किसी दूसरे का मकान तीस रुपये मासिक किराये पर लिया था। मालिक की ओर से रसीद पचास रुपये की दी जाती थी और बीस रुपये कानूनी मशविरे के नाम पर कम कर दिये जाते थे। यह युक्ति इसलिए की गयी थी कि आगे चलकर अगर किसी दूसरे को मकान किराये से देना पड़े, तो मालूम पड़े कि

मकान ज्यादा किराये का है। दैवयोग से उनमें झगड़ा हो गया और मामला अदालत तक पहुँच गया। मालिक ने बकाया किराया पचास रुपये माहवार के हिसाब से माँगा। अदालत ने फैसला दिया कि वकील साहब का बचाव ठीक है। वह एक निष्कपट धोखा (Innocent fraud) था।

अखबारवाले अपने 'डाक-संस्करण' पर एक दो रोज बाद की तारीख डालते हैं। ऐसे अखबार कई बार अखबार की तारीख के एक रोज पहले ही पाठक के हाथ में पहुँच जाते हैं। एक साप्ताहिक अखबार मेरे हाथ उस पर छपी हुई तारीख के चार रोज पहले ही पड़ गया। एकाध तारीख का फर्क तो प्रायः सभी अखबारवाले रखते हैं। इसमें दोष देखने की हिम्मत किसे हो सकती है? यह सूक्ष्म असत्य है या नहीं, दोष है या नहीं, यह एक प्रश्न है। लेकिन अनुभव कई बार यह आया कि प्रवासी ने उस रोज की तारीख देखकर अखबार खरीदा और अगले दिन की ही खबर, जो उसने पहले ही दूसरे अखबार में पढ़ ली थी, पढ़कर उसे पछताना पड़ा।

धर्म के नाम पर

धर्म के नाम पर भी अशुद्धि कम नहीं चल रही है। धर्म का धंधा करनेवालों की तो बात ही छोड़ दें। उनमें दूसरे व्यावहारिक धंधेवालों से अशुद्धि कम नहीं है। दुख की बात यह है कि यह सब ईश्वर के नाम पर किया जाता है और भोले लोग खुद विवेक न रखकर अपनी खुशी से ठगी के शिकार बनते हैं। तीर्थ-स्थानों में एक ही बछिया की पूँछ पर अनेक लोग पानी छोड़-छोड़कर सवा-सवा रुपये में गोदान का पुण्य मिल जाने की आशा और विश्वास रखते हैं।

●●●

चौथा अध्याय

भ्रष्टाचार रोकने के सम्बन्ध में कुछ सुझाव

[इस पुस्तक के 'आमुख' मे लिखा गया है कि जब वर्धा मे शुद्ध-व्यवहार समिति का काम चलता था, तब बाहर से अनेक पत्र सलाह और मार्गदर्शन के लिए आते थे। उनमे से जो आम जनता के काम के होते थे, उनके कुछ अश तथा उन पर दिये गये उत्तर तथा उस उस विषय पर जो विचार सूझते थे, वे 'हरिजन' मे प्रकाशित किये जाते थे। उनमे से कुछ लेख श्री किशोरलालभाई मशरूवाला लिखते थे और कुछ मै। इस अध्याय मे उस पत्र-व्यवहार तथा उन लेखों मे से कुछ अश उद्धृत किये गये है। उस समय परिस्थिति कुछ भिन्न थी और लेख भी सामयिक थे, तथापि आज की दशा मे और आगे भी उनके उपयोग की सम्भावना है। इन स्फुट लेखो और विषयों की विविधता के कारण, विषय के विवेचन मे ठीक सिलसिला नही दीखेगा, समय की भिन्नता के कारण कुछ बाते शायद अनुपयुक्त भी दीखे। फिर भी पाठक उन्हे ध्यानपूर्वक पढ़ेगे तो उनका उपयोग वैसे ही दूसरे मामलो में अथवा दूसरी परिस्थिति मे जरूर हो सकेगा और जिज्ञासु को मार्गदर्शन मिलेगा। पत्रों और लेखो मे जीवन शुद्धि सम्बन्धी जो तथ्य और सत्य है, उसका मूल्य शाश्वत है। इसीलिए, मेरा खयाल है कि उनका भिन्न भिन्न काल और परिस्थिति मे खडे होनेवाले प्रसंगो मे भी विवेकपूर्वक उपयोग किया जा सकता है।]

सही प्रयत्न से सफलता

कंट्रोल की वजह से कई नयी-नयी अड़चनें आजकल उपस्थित होती हैं और ग्राहक बड़ी लाचारी महसूस करता है। गुजरात मे एक भाई को, प्रयत्न करने पर भी, नियंत्रित दर पर गुड़ नहीं मिला, यद्यपि बाजार मे अधिक भाव पर चाहे जितना गुड़ मिल सकता था। उन्होंने काफी समय तक बिना शक्कर और गुड़ से निभाया।

कर आड़े-टेढ़े मार्ग से ज्यादा अनाज पाने की कोशिश करने से पहले कष्ट भोगकर भी पोषण के लिए दूसरे साधन जुटाने चाहिए। पुरुषार्थ के बल पर ही हम संकट से पार हो सकते हैं। अगर परिस्थिति बुरी है तो कष्ट टल भी कैसे सकता है ? कुछ लोग भले ही अपने लिए सुविधा कर सकें, पर अधिकांश लोगों का इस तरह से छुटकारा कैसे हो सकेगा ? जो धर्म की दृष्टि से सोचते हैं, उनकी जिम्मेवारी भी बहुत बड़ी है। मेरा यह लिखना कठोर जरूर है, पर संकट की अवस्था में सभी के लिए कष्ट भोगने के अलावा दूसरा मार्ग ही क्या हो सकता है ?

इस पर श्री किशोरलालभाई ने ये सुझाव और दिये :

"आरोग्य-शास्त्र के जानकारों की यह साधारण राय है कि हम यदि नीचे लिखी आदतें डाल लें, तो खुराक से बहुत ज्यादा कस निकाल सकते हैं और थोड़ी मात्रा से पूरा पोषण प्राप्त कर सकते हैं.

"१ रोटी न बहुत मोटी बनाना, न बहुत पतली। २ रोटी के बहुत मोटे कौर न भरना। ३ उसे दाल या पतली भाजी आदि में भिगोकर न खाना, सूखी ही खाना। ४. उसे इतना चबा चबाकर खाना कि गले से उतारने के पहले ही वह पतली रबड़ी-जैसी हो जाय। (इसके मानी यह नहीं कि रोटी के बदले रबड़ी ही खाना। मुँह की लार में चबाकर बनी हुई रबड़ी और आटे को पानी में उबालकर बनायी हुई रबड़ी में आरोग्य की दृष्टि से बहुत अन्तर है।) ५ आटे से चोकर न निकालना। ६. पॉलिश किया हुआ चावल न खाना। ७. चावल का पानी उसीमें रख छोड़ना, बल्कि इतना पानी ही न डालना कि वह निकालना पड़े। यदि यह शुरू में न सधे और पानी ज्यादा पड़ने से निकालना ही पड़े, तो वह पानी कभी फेंका न जाय। चावल का बहुत-सा सत्त्व उसीमें आ जाता है। इसलिए उसकी पेज करके पी जाना या दाल, साग आदि में उसे डाल देना चाहिए। ८ चावल भी मुँह में डालकर गले से उतारने की चीज नहीं है। वह भी अच्छी तरह मुँह में पतला हो जाय, तब तक उसे चबाते रहना चाहिए। आरोग्य-शास्त्री बताते हैं कि इस तरह खुराक का

पूरा कस निकालने से ९ औंस खुराक जल्दी खायी हुई १४ औंस खुराक से ज्यादा शक्ति दे सकती है।"

ता० २-५-'५१.

व्यवहार में साधन-शुद्धि

राजस्थान से एक भाई ने लिखा :

"खनिज पदार्थों का काम करनेवालों के लिए यह नियम है कि पहले १०० रुपये फीस भरकर वे सरकार से सर्टिफिकेट ऑफ अप्रूवल (सम्मति-पत्र) हासिल करें। यह सम्मति-पत्र देने से पहले कुछ खानापूरी करनी पड़ती है। उसमें एक चीज यह भी है कि आर्थिक स्थिति के लिए बैंक से पूछताछ करते है और बैंकवाले, जिनका खाता होता है, उनके लिए लिख भी देते है। कानून की दृष्टि से इतना ही काफी होता है। पर सब कुछ सरकारी कर्मचारियों पर निर्भर है। असिस्टेंट डाइरेक्टर ऑफ माइन्स के यहाँ से कागज जयपुर के डाइरेक्टर ऑफ माइन्स के पास भेजा जाता है, जहाँ महीनों लग जाते हैं और फिर वहाँ से वह मन्त्री के दफ्तर में जाता है। इस तरह उस कागज को पहली सीढ़ी से आखिरी सीढ़ी तक निकलवाने में महीनों गुजर जाते हैं और कर्मचारियों को कुछ दिये-लिये बिना काम निकालना असंभव-सा होता है। प्रॉस्पेक्टिंग लाइसेन्स पाने के लिए भी काफी समय लग जाता है।

"सबसे बड़ी दिक्कत इस काम में सरकारी कर्मचारियों की है, जो कागज को दबाकर रख देते हैं। अतः काम करनेवाले को कुछ देना ही पड़ता है, अन्यथा काम नहीं होता।

"मेरी स्वयं की इस काम में काफी दिलचस्पी होने से मैंने यह जिम्मेवारी उठायी, पर लगातार आठ महीने के अनुभव से जो चीज मिली, वह यही कि बिना किसीको कुछ दिये-लिये काम

निकालना असंभव है। छह महीने का वक्त तो कानून से काम निकलवाने की सनक में बरबाद कर देना पड़ा। हजारों रुपये खर्च हुए। कमाई गयी, मजदूरों की रोजी भी गयी। आखिर जाकर कारकुनों से मिलकर कागज निकलवाने पडे, जो अकारण ही रुके पड़े थे। मै आपको बताऊँ कि यदि यही रास्ता मैं छह महीने पहले अख्तियार करता तो मेरे साथ के जो काम करनेवाले हैं, वे कम-से-कम दो लाख रुपये कमाते, हजारों रुपये मजदूरों को मजदूरी के रूप में बँटते, सरकार को रॉयल्टी के रूप में पैसा मिलता और राष्ट्र को डालर की प्राप्ति होती। वास्तविकता यह है कि मेरे कागजों में कोई ऐसी कमी नहीं थी, जिसको इस तरह का ढंग अपनाकर दूर करने की आवश्यकता पड़े। मैंने इसमें न तो कोई बेजा फायदा उठाया और न कोई गैरकानूनी चीज हुई—सिवा इसके कि जो कागज अकारण ही रुके पडे थे, वे जल्दी निकल गये।

"मैं स्वयं महसूस करता हूँ कि इस तरह का ढंग अपनाकर काम निकलवाना अनीतिपूर्ण है। पर क्या थोड़ी सहूलियत पाने के लिए किसीको कुछ दिये बगैर काम नहीं चले तो कानून भंग किये बिना कुछ देकर काम जल्दी कराना, जिससे व्यक्ति, समाज व राष्ट्र सभी का हित हो, इष्ट नहीं हो सकता ?

"यह कोई ऐसा काम नहीं था, जिसे अन्न या वस्त्र की तरह चोर-बाजार में ले जाना पडे। जनता के प्रति गैर-जिम्मेवारी का तो प्रश्न ही नहीं, तो फिर ऐसे मामलों में इस तरह पैसा देकर काम निकलवाने को रिश्वत के बजाय दूसरा नाम क्यों न दिया जाय ?

"मुझे तो ऐसा लगता है कि जो मामले साफ हैं, जिनमें चोरी, धोखाधड़ी या राष्ट्र के प्रति गद्दारी जैसी कोई चीज नहीं है

और जो स्वार्थ के साथ परमार्थ भी अच्छे ढंग से साधते है, ऐसे कामों को जल्दी करवाने का और कोई चारा न हो तो क्या ढंग अपनाया जाय, यह साफ होना चाहिए। अफसर लोग कोई सुनवाई नहीं करते। उल्टे, अफसरों से काम बिगड़ता ही है। पक्षपात का बोलबाला है।"

यह लंबा उद्धरण इसलिए दिया गया है कि लेखक का विचार उसके ही जोरदार शब्दो में पाठकों के सामने आवे। ऐसे सवाल व्यवहार के बहुत से क्षेत्रो में खड़े होते हैं, विशेषतः अदालती काम-काज, रेल्वे आदि में। जिनका अदालतो के काम से परिचय है, वे जानते हैं कि वहाँ के कारकुनों द्वारा गरीब देहाती कितने लूटे जाते हैं। इस दशा में थोड़ा-सा कुछ ले-देकर अपना काम निकाल लेने के आसान मार्ग का सहारा लेना लोग बेहतर मान लेते हैं, नहीं तो समय और शक्ति बरबाद होती है और पैसे की भी हानि उठानी पड़ती है।

पर लेखक ने तो यह प्रश्न खड़ा किया है कि जहाँ अपना बेजा स्वार्थ साधने की बात नहीं है, केवल हक की बात करा लेनी है, वहाँ कुछ दे देवें तो उसे रिश्वत क्यों कहे और अनीति क्यों समझें ?

इसमें साधन-शुद्धि का प्रश्न है। एक विचारधारा ऐसी है कि अगर हमारा उद्देश्य शुद्ध है तो किसी भी साधन से हम उसे सफल क्यों न करे ? आखिर हमारा प्रयास समाज की भलाई के लिए ही तो है न ? वे इसे व्यावहारिक सत्य और सयानापन मानते हैं। गांधीजी ने साधन-शुद्धि के बारे में काफी लिखा है। यहाँ अधिक लिखने की जरूरत नहीं है। जिनको तत्त्व के मूल तक पहुँचना है,

उन्हें विला शक समझ लेना चाहिए कि अंत में बुराई का फल भला नहीं हो सकता, कुछ तात्कालिक लाभ भले ही दीख पड़े। व्यक्तियों द्वारा ऐसे अशुद्ध साधनों का प्रयोग होते रहने से ही सामुदायिक अशुद्धता बढ़ती है।

देनेवाले की दृष्टि से इस प्रकार पैसा देने को रिश्वत न मानें तो भी लेनेवाले की दृष्टि से वह रिश्वत के सिवा और क्या है? कर्मचारी का कर्तव्य है कि वह ऐसा काम समय पर दक्षता से कर दे, जिसके लिए वह वेतन पाता है। अगर उसमें वह इस तरह ज्यादा पैसा लेने की इच्छा रखता है तो वह अपने पद का बेजा फायदा उठाता है। इस तरह पैसा लेते रहने से रिश्वत लेने की आदत बढ़ती है और कर्मचारी के काम में ढील-ढाल होती है। वह समझ लेता है कि अगर मैं काम करने में देर करूँगा तो कुछ-न-कुछ अवश्य मिल जायगा और यह प्रथा ही बन जाती है कि काम में ढील करें। जिनका उनसे काम पड़ता है, वे भी सोच लेते हैं कि आखिर कुछ दिये बिना तो काम निपटेगा नहीं, फिर बिना राह देखे पहले से ही कुछ दक्षिणा क्यों न दे दी जाय, ताकि काम जल्दी बन जाय और आर्थिक हानि न हो। इस प्रकार यह मान्य रूढ़ि बन जाती है, जो बहुतों को अखरती नहीं और जिसे दुरुस्त करने की अधिकारियों को भी सख्त जरूरत नहीं दीखती। जिनके सामने केवल व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रश्न है, उनके लिए भी यह बात दोषास्पद है। पर जो देश का यह कलंक दूर करना चाहते हैं, उनका तो फर्ज ही है कि वे कष्ट उठाकर और त्याग करके ऐसे दोषों को हटावें, न कि नीति के गलत अर्थ को अपनाकर अपना

काम निकाल लें तथा गलत दलीलों से अपनी गलती का समर्थन करने का प्रयास करें।

सब सरकारों को इस दोष की ओर गहरा ध्यान देना चाहिए। यह रोग बहुत फैला हुआ है। इससे सरकारों की बड़ी बदनामी होती है और समाज में अनाचार फैलता है। अगर अधिकारी लोग इस ओर ध्यान देवें, तो यह दोष बहुत कम हो सकता है। अधिकारी लोग प्रायः ऐसे दोषों की तरफ से आँख मूँद लेते हैं। अगर शिकायत होने पर दोष दीख पड़े और कर्मचारी को उपयुक्त सजा दी जाय, तो उसका दूसरों पर असर होता है। मुझे कुछ ऐसे अधिकारी मालूम हैं, जिनके द्वारा शुद्धि का प्रयत्न होने पर ऐसी रिश्वत बहुत घट गयी थी। खुद अधिकारी को चाहिए कि वह बिना शिकायत हुए भी इस विषय में सजग रहे। अगर उसके मातहतों को उसके रुख का पता चल जाय, तो वे खुद ही ऐसी रिश्वत लेने की हिम्मत नहीं करेंगे।

लेखक ने जो मामला पेश किया है उसमें, और ऐसे ही अन्य मामलों में एक कारगर उपाय यह है कि एक ऐसा नियम बनाकर, शायद नियम तो होगा भी, उसका अमल सख्ती से किया जाना चाहिए कि जो दरख्वास्त आवे, उसकी पेशी की तारीख बिना अपवाद मुकर्रर कर ही दी जाय। अगर पहली पेशी में काम न निपटे, तो दूसरी, तीसरी—इस प्रकार उसका निर्णय होने तक पेशी की तारीख बराबर दी जाती रहे और उस रोज मामला अधिकारी के सामने अवश्य रखा जाय, जैसा कि दीवानी मुकदमों में किया जाता है।

ता० ९-६-'५१.

प्रतिकार का अभाव

व्यवहार में शुद्धि रखने के प्रयत्न में आनेवाली अनेक दिक्कतों के बयानों से, जो दफ्तर में लगातार आ रहे हैं, पता चलता है कि परिस्थिति बड़ी विषम है और सचमुच दिक्कतें भी बहुत बड़ी हैं। फिर भी दिक्कतों के बारे में एक बात ध्यान में ला देना जरूरी है। दिक्कतें हैं, पर हमारी ऐसी कुछ आदत-सी हो गयी है कि हम उनका मुकाबला करने की बात सोचते ही नहीं। कहीं कुछ थोड़ी-सी अड़चन आयी कि झट आड़े-टेढ़े मार्ग से ही उसे रफा करने में लग जाते हैं। अगर उनका कुछ मुकाबला करने की सोचें तो मुझे विश्वास है कि बहुत-से मामलों में सही रास्ता निकल सकेगा, पर हम थोड़ी-सी भी तकलीफ सहन नहीं करना चाहते। यह भ्रष्टाचार बढ़ने का एक बड़ा कारण है। चीनी की कमी हो तो हम कुछ समय उसके बिना भी निभा सकते हैं। गुड़ से तो काम चला ही सकते हैं। रोजाना एक छटाँक चीनी खाने की आदत हो तो आधी छटाँक से भी काम चल सकता है। गेहूँ की कमी हो तो कुछ चावल से भी निभ सकता है। चावल की कमी गेहूँ से पूरी की जा सकती है। दोनों की कमी ज्वार आदि अन्य अनाजों से भी पूरी की जा सकती है। पर हम अपनी आदत में कुछ भी फर्क नहीं करना चाहेंगे और पास में पैसा है, इसलिए काले-बाजार से महँगी चीज खरीदकर अपने आराम में कमी नहीं होने देंगे। गरीब लोग अपना काम कैसे चलाते हैं, यह हम देखते ही नहीं। हम कुछ संयम से काम लें, तो इतनी अशुद्धता न करनी पड़े।

रिश्वत : एक सर्वसाधारण प्रथा

कहीं-कहीं रिश्वत एक सर्वसाधारण प्रथा बन गयी है, उसकी दरें

भी मुकर्रर हो गयी हैं। विना माँगे ही कर्मचारी को रिश्वत दे दी जाती है। यह आदत यहाँ तक बढ़ चुकी है कि उसमें देनेवाले को कोई दोष दीखता ही नहीं। यह राजमार्ग या महाजनो का पंथ सा बन गया है। अगर ऐसे दोष हमें सचमुच चुभें और हम उनका मुकाबला करने की कोशिश करते रहे, तो बहुत बार हानि हुए विना ही हम उनसे बच सकते हैं।

शुद्धि के प्रयत्न में आफत

यह नहीं कि मुकाबला करने का मार्ग सदा सरल रहेगा। वह काँटों का मार्ग है और आज की विषम परिस्थिति में दुस्तर-सा है। जिन कर्मचारियो का हम मुकाबला करने के लिए आगे बढ़ेंगे, वे अनेक प्रकार से हमे सता सकते हैं। पुलिस-विभाग का मुकाबला करना तो टेढ़ी खीर होगी। गुण्डो की मार्फत लोग सताये जा सकते हैं और झूठे मुकदमे भी चलाये जा सकते हैं। सरकारी सप्लाई-विभाग से व्यापारियों का रात-दिन काम पड़ता है। अगर कर्मचारियो की शिकायत की जाय तो वे नाराज होकर लोगो को अनेक प्रकार से संकट मे डाल सकते हैं। कुछ भाइयों की शिकायत है कि भ्रष्टाचार रोकने के प्रयास मे उन पर अधिकारियो की नाराजी हुई और कुछ झूठे मुकदमे चलाये गये, जिनके फलस्वरूप उनके व्यवसाय को तो धक्का पहुँचा ही, साथ ही मुकदमो की पैरवी करने मे, वकील, साक्ष आदि के खर्च मे हजारो-लाखो की हानि भी उठानी पड़ी। ऐसे आघात कैसे सहन किये जायँ? पहली बात तो यह है कि जो हिम्मत नहीं रखते, वे विना सोचे-विचारे इस तरह आगे न बढ़ें। यह मानकर चलना चाहिए कि शुद्धिकरण मे तकलीफ

सीमित करके संतोष मान सकते हैं और शुद्ध व्यवहार-आन्दोलन में शरीक हो सकते हैं ?' मानव-हृदय के ऐसे टुकड़े नहीं किये जा सकते। जो दूसरों के नाम पर अशुद्धि करेगा, वह निजी काम में भी अशुद्धि करने को ललचायेगा ही। निजी काम में अशुद्धि के प्रति ग्लानि होगी, तो मालिक के अशुद्ध कामो मे भी ग्लानि रहेगी ही। उसका धर्म है कि वह मालिक को समझावे और मालिक के काम में भी अपनी ओर से अशुद्धि में हिस्सेदार न बने।

ता० १४-६-'५१.

सरकारी कर्मचारी और व्यापारी वर्ग

श्री किशोरलालभाई मशरूवाला ने सरकारी अफसरो एवं व्यापारियों में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के संबंध में उनको आगाह करते हुए लिखा :

"श्री जवाहरलाल नेहरू बडी दृढता के साथ कहते है कि 'नियन्त्रण नहीं उठाये जा सकते, क्योकि इनके उठते ही गरीबो को भूखे-नगे रहने की नौबत आ जाती है, मध्यम वर्ग परेशानी मे पड जाता है। जनता के सेवक के नाते वे इस स्थिति को हरगिज दावत नही दे सकते' फिर भले ही भ्रष्टाचार कुछ बढे।

"मै इस सिलसिले मे सर्व-सेवा-सघ की ता० ७-७-'५१ की वर्धा की बैठक मे जो प्रस्ताव इस वारे मे स्वीकृत हुआ, उसकी ओर पाठको का ध्यान खीचना चाहता हूँ।*

"भ्रष्टाचार की वात लें, तो अनियन्त्रित और नियन्त्रित, दोनो ही तरह के वाजारो में वेईमानी और भ्रष्टाचार चलता है। यहाँ दो मे से किसी एक का चुनाव करना है। अनियन्त्रित वाजार मे पैसा इकट्ठा करना ही जिनके जीवन का ध्येय हो गया है, ऐसे वेईमान और भावनाशून्य व्यापारी मुनाफाखोरी की

* देखिये, इसी पुस्तक मे पृष्ठ २०-२१

होट मे जुट जाते है, तथा जिनके पास पैसे की कमी नही है, ऐसे स्वार्थी ग्राहक हर तरह के माल का अपनी आवश्यकता से अधिक सग्रह करते है। नतीजा यह होता है कि कीमते चोटी पर चढ जाती है और दुर्भिक्ष की कोई बात न होते हुए भी गरीबो के लिए भयानक दुर्भिक्ष की स्थिति पैदा हो जाती है।

"नियन्त्रणो से होनेवाले भ्रष्टाचार की बात तो कई बार कही गयी है और मानी भी गयी है, लेकिन अनियत्रितता का भ्रष्टाचार और भी भयानक होता है और उसे रोकना भी ज्यादा कठिन है। इसके सिवा सरकार यह उम्मीद करती है कि अनुभव ज्यो-ज्यो बढेगा, वह नियन्त्रणो की व्यवस्था के दोष दूर करेगी और भ्रष्टाचार कम होगा। श्री नेहरू ने इस प्रयत्न में जनता का सहयोग भी माँगा है।

"बहुत सोच-विचार के बाद शुद्ध व्यवहार-आन्दोलन के चालक इस निर्णय पर आये है कि सर्वोदय और समान सामाजिक न्याय की परिस्थितियाँ पैदा करने का एकमात्र उपाय यही है कि हर नागरिक शुद्ध व्यवहार का पालन करे। शुद्ध नैतिक जीवन का अर्थ ही है, सयमित जीवन। अगर हम अपने जीवन पर स्वेच्छा से सयम नही रखते, तो जो जनता के कल्याण का उद्योग करते हैं, जैसे गुरु, धर्म या सम्प्रदाय, समाज सरकार आदि, वे बाहरी नियत्रण लादेंगे। हरएक का अपना विशेष ढग होगा, लेकिन वे बाहरी नियन्त्रण ही होगे। बाहरी नियन्त्रण अनगढ और भोडे होते है और समाज के जैसी जटिल सघटना मे उनका प्रयोग हर जगह नियम और न्याय का अनुवर्तन नही कर सकता। इसलिए जनता के किसी-न-किसी वर्ग को उनसे कुछ कठिनाई और असतोष तो होता ही है। लेकिन लोग स्वेच्छा से यदि अपने नियन्त्रण आप ही करे तो व्रतचारी को धन न सही, सतोष तो अवश्य मिलेगा और समाज का भी हित होगा। शुद्ध व्यवहार ऐसे स्वेच्छा-स्वीकृत आत्म-सयम का ही दूसरा नाम है।

"इस प्रयत्न में सरकारी कर्मचारी और व्यापारी बहुत बड़ा काम कर सकते है। भ्रष्टाचार की परिस्थिति के निर्माण में इस जोड़ी का बड़ा हाथ है। एक तरफ यह शक्तिशाली जोड़ी है, दूसरी तरफ गरीब ग्राहक हैं और कुछ इने-गिने ईमानदार व्यापारी।

"सरकारी कर्मचारियों और व्यापारियो में से कौन किसके भ्रष्टाचार के लिए उत्तरदायी है, यह कोई नही कह सकता। इस परिस्थिति के निर्माण में दोनों का समान योग है। ताली जिस तरह दोनों हाथों से बजती है, उसी तरह दोनों के सहयोग से भ्रष्टाचार की उत्पत्ति हुई है। और यद्यपि व्यापारी के पास भ्रष्टाचार का साधन है, फिर भी उसे सीधा करने और राह पर लाने की शक्ति सरकारी अधिकारी के ही पास है, भले ही व्यापारी कितना ही पैसेवाला और प्रभावशाली क्यों न हो। अगर मन्त्री और सरकारी अधिकारी निर्भय हों, अपने मार्ग पर दृढ हों और परिचय, दोस्ती आदि के अनुचित प्रभावों से मुक्त रह सकें, तो व्यापारी करोड़पति ही क्यों न हो, उसका सारा पैसा भी उसे बचा नहीं सकता।

"मन्त्रियों को तो पैसे के लोभ में पड़कर उन्हें दण्ड से बचाने या विशेष सुविधाएँ देने का कोई कारण भी नही है। भ्रष्टाचार के लिए किसी भी तरह का कोई बहाना वे नहीं दे सकते। फिर रहे सरकारी कर्मचारी। उनमें निचली श्रेणी के नौकरों को भी जितना वेतन और स्थिरता होती है, उतनी उनके ही दर्जे के समान शिक्षा और योग्यतावाले गैर-सरकारी नौकरीवाले व्यक्तियों को नहीं मिलती। उन्हें जानना चाहिए कि उन्हें अपनी जगह रहकर देशवासियों की सेवा उसी वृत्ति से करनी है, जैसी कि रचनात्मक सस्थाओं के, भारत-सेवक-सघ तथा उसी किस्म की दूसरी सस्थाओं के सदस्य, जिन्हें हम 'राष्ट्र-सेवक' कहते हैं, करते हैं और सरकार उनके भरण-पोषण का बोझ इसीलिए उठाती है। सरकारी कर्मचारियों को अर्थ की कोई चिन्ता नहीं होती। अत. वे यदि

शुद्धता और कर्तव्यबुद्धि से काम करे तो सहज ही सेवा और सन्तोष का जीवन बिता सकते है और जनता के आदर-भाजन हो सकते है।

"विदेशी राज्य के कारण भारत की सरकारी नौकरियों का जो दुःखद पतन हुआ, अब उसके भी रहने का कोई कारण नहीं है। आजादी ने उन्हें दूसरे लोगों की अपेक्षा ज्यादा सुविधाएँ दी हैं। जनता के किसी और वर्ग को आजादी का ऐसा भौतिक लाभ नहीं मिला, जैसा उन्हें। जनता की दशा सुधारने या बिगाडने की कुंजी भी उनके ही हाथ में है। अगर वे लोग परिस्थिति की चुनौती स्वीकार करें और उसके मुकाबले के लिए कमर कसें, ईमानदारी का उदाहरण पेश करें; डर, मेहरबानी या अनुचित लोभ छोड़कर अपना कर्तव्य करें, तो व्यापारियों को तथा जनता के और सब वर्गों को भी सुधरना ही पडेगा। मैं तमाम सरकारी कर्मचारियों से इस विषय पर गहराई और संजीदगी से विचार करने का अनुरोध करता हूँ। शायद पैसा उन्हें किंचित् आराम दे सकता है, लेकिन जिन्दगी की सार्थकता और पूर्णता वह नहीं दे सकता।'

ता० १९-७-'५१.

रिश्वतखोरी

"अभी कुछ दिन हुए, एक चीफ मिनिस्टर साहब के एक भाषण की रिपोर्ट देखने में आयी। भाषण को पढ़कर ऐसा मालूम होता है, मानो वह सरकारी नौकरों की रिश्वतखोरी का बचाव करते हैं। वह लगभग ऐसा कहते दीखते हैं कि सरकारी नौकरों को उनकी इस कमजोरी के लिए दोष देने के बजाय हमें उन पर दया करनी चाहिए। उनकी दृष्टि में सारा दोष उस चरित्र-हीन जनता का है, जो उनके सामने अपना स्वार्थ साधने के लिए

प्रलोभन रखती है। सरकारी नौकर दूसरे दुर्बल मनुष्य की तरह इन प्रलोभनों का शिकार हो जाते हैं, आखिर उन्हे जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ता है और इस मुश्किल दुनिया मे अपना पेट भरना पड़ता है।

"निचली श्रेणी के सरकारी नौकरों की आर्थिक कठिनाइयों के लिए जिन्हें पर्याप्त वेतन नहीं मिलता, हरएक आदमी हमदर्दी महसूस करेगा। लेकिन किसी सरकारी आदमी के इनाम या रिश्वत लेने का बचाव कोई नहीं कर सकता, सरकार तो हरगिज नहीं कर सकती। उन्हें पर्याप्त वेतन मिलता है या नहीं, यह देखने का काम सरकार का है। और अगर वह इस बात की जाँच आँख खोलकर करे, तो उसे पता लगेगा कि महकमों में उसके बिल्कुल ऊपरी और निचली श्रेणी के नौकरों के वेतनों में १ से लगाकर ९० तक का अनुपात है। इस विषमता को जारी रखने में औचित्य नहीं है। दूसरे, अगर हम इस बात का खयाल करें, तो सरकार का कम-से-कम वेतन पानेवाला नौकर भी उसी श्रेणी के गैर सरकारी काम करनेवाले आदमी की बनिस्बत ज्यादा पैसा पाता है और उसकी नौकरी भी ज्यादा सुरक्षित होती है। इसलिए इससे तो यह सिद्ध होता है कि सरकारी नौकरियों में इनाम-रिश्वत का कोई औचित्य नहीं हो सकता।

"जनता के जो लोग सरकारी अधिकारियों को इसलिए रिश्वत देते हैं कि वे उन पर कुछ अनुचित मेहरबानी करें, उनका हमें बचाव नहीं करना है। यह सच है कि बेईमान लोगों का एक ऐसा वर्ग है, जो इतने बड़े प्रलोभन पेश करता है कि कभी-कभी मान-

नीय मंत्री को भी उनका तिरस्कार करना कठिन होता है। लेकिन इसे रिश्वत लेनेवाला अपने बचाव में पेश नहीं कर सकता।"

ता० १-९-'५१.

अशुद्धि मिटाने की कोशिश

सूरत जिले के एक भाई का पत्र आया है, जिसमें उन्होंने रेल्वे तथा अन्य सरकारी विभागों के भ्रष्टाचार के कई प्रमाण दिये हैं। उस पत्र का सारांश नीचे दिया जाता है :

"इस वर्ष सूरत जिले में आम की फसल बहुत हुई। उसका माल बहुत बड़ी तादाद में अहमदाबाद और बम्बई की ओर कुछ समय तक सवारी गाड़ी से जाता रहा। पर इतना माल चढ़ाने में गाड़ियाँ लेट होतीं। इसलिए रेल्वे-अधिकारियों ने सवारी गाड़ियों में आम के पार्सल लेना मना कर दिया। मालगाड़ी से माल भेजा जाय तो देर होती है और माल के दाम भी कम आते हैं। मनाही होते हुए भी कोई दिन ऐसा नहीं जाता था, जब कि सवारी गाड़ी से माल जाना बन्द रहा हो। उन हरएक तीन-चार स्टेशनों से ही रोजाना करीब ५०० टोकरी माल हरएक सवारी गाड़ी से जाता रहा। जाँचवाले इन्स्पेक्टर, स्टेशन मास्टर, गार्ड आदि सबके सामने ही यह चोरी होती रही। हरएक टोकरी के पीछे आठ आने तक रिश्वत दी जाती थी। माल ले जानेवाले को न अपने लिए गाडी का टिकट, न माल के लिए बिल्टी ही करानी पड़ती थी। गाड़ियाँ लेट तो पहले की तरह होती ही रहीं। जब मैंने यह सिलसिला देखा तो ऊपर के अधिकारियों को लिखा कि मैं ऐसा कदम उठा सकता हूँ, जिससे यह बन्द

प्रलोभन रखती है। सरकारी नौकर दूसरे दुर्बल मनुष्य की तरह इन प्रलोभनों का शिकार हो जाते हैं, आखिर उन्हे जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ता है और इस मुश्किल दुनिया में अपना पेट भरना पड़ता है।

"निचली श्रेणी के सरकारी नौकरों की आर्थिक कठिनाइयो के लिए जिन्हें पर्याप्त वेतन नहीं मिलता, हरएक आदमी हमदर्दी महसूस करेगा। लेकिन किसी सरकारी आदमी के इनाम या रिश्वत लेने का बचाव कोई नहीं कर सकता, सरकार तो हरगिज नहीं कर सकती। उन्हें पर्याप्त वेतन मिलता है या नहीं, यह देखने का काम सरकार का है। और अगर वह इस बात की जाँच आँख खोलकर करे, तो उसे पता लगेगा कि महकमों में उसके बिल्कुल ऊपरी और निचली श्रेणी के नौकरों के वेतनों में १ से लगाकर ९० तक का अनुपात है। इस विषमता को जारी रखने में औचित्य नहीं है। दूसरे, अगर हम इस बात का खयाल करें, तो सरकार का कम-से-कम वेतन पानेवाला नौकर भी उसी श्रेणी के गैर सरकारी काम करनेवाले आदमी की बनिस्बत ज्यादा पैसा पाता है और उसकी नौकरी भी ज्यादा सुरक्षित होती है। इसलिए इससे तो यह सिद्ध होता है कि सरकारी नौकरियों में इनाम-रिश्वत का कोई औचित्य नहीं हो सकता।

"जनता के जो लोग सरकारी अधिकारियों को इसलिए रिश्वत देते हैं कि वे उन पर कुछ अनुचित मेहरबानी करें, उनका हमें बचाव नहीं करना है। यह सच है कि बेईमान लोगों का एक ऐसा वर्ग है, जो इतने बड़े प्रलोभन पेश करता है कि कभी-कभी मान-

नीय मंत्री को भी उनका तिरस्कार करना कठिन होता है। लेकिन इसे रिश्वत लेनेवाला अपने बचाव में पेश नहीं कर सकता।"

ता० १-९-'५१.

अशुद्धि मिटाने की कोशिश

सूरत जिले के एक भाई का पत्र आया है, जिसमें उन्होंने रेल्वे तथा अन्य सरकारी विभागों के भ्रष्टाचार के कई प्रमाण दिये हैं। उस पत्र का सारांश नीचे दिया जाता है :

"इस वर्ष सूरत जिले मे आम की फसल बहुत हुई। उसका माल बहुत बड़ी तादाद में अहमदाबाद और बम्बई की ओर कुछ समय तक सवारी गाड़ी से जाता रहा। पर इतना माल चढ़ाने में गाड़ियाँ लेट होतीं। इसलिए रेल्वे-अधिकारियों ने सवारी गाड़ियों में आम के पार्सल लेना मना कर दिया। मालगाड़ी से माल भेजा जाय तो देर होती है और माल के दाम भी कम आते हैं। मनाही होते हुए भी कोई दिन ऐसा नहीं जाता था, जब कि सवारी गाड़ी से माल जाना बन्द रहा हो। उन हरएक तीन-चार स्टेशनों से ही रोजाना करीब ५०० टोकरी माल हरएक सवारी गाड़ी से जाता रहा। जाँचवाले इन्स्पेक्टर, स्टेशन मास्टर, गार्ड आदि सबके सामने ही यह चोरी होती रही। हरएक टोकरी के पीछे आठ आने तक रिश्वत दी जाती थी। माल ले जानेवाले को न अपने लिए गाड़ी का टिकट, न माल के लिए बिल्टी ही करानी पड़ती थी। गाड़ियाँ लेट तो पहले की तरह होती ही रहीं। जब मैंने यह सिलसिला देखा तो ऊपर के अधिकारियों को लिखा कि मैं ऐसा कदम उठा सकता हूँ, जिससे यह बन्द

हो सके। पर उसमें गाड़ी रुककर लेट होगी और मुसाफिरों को तकलीफ होगी। इसलिए अगर दो दिनों में यह बन्द नहीं हुआ, तो मैं अपनी कार्रवाई करूँगा। तुरन्त ही पुलिस पार्टी, वाचमेन, टिकट जॉचनेवाले आदि की एक टोली इस काम में लगी। पहले ही रोज बगैर रसीद की ८०० टोकरियाँ पकडी गयीं। बाद में भी कार्रवाई चालू रही। यह भ्रष्टाचार बिल्कुल बन्द तो नहीं हुआ, पर बहुत-कुछ कम हो गया। तथापि अब तक जो भ्रष्टाचार और चोरी करते थे, उनका कुछ बिगडा हो या उन पर मुकदमा चला हो या उनको सजा दी गयी हो, ऐसा नहीं दीखता। दूसरे भ्रष्टाचार के मामलों में भी अधिकारियों से लिखा-पढ़ी होती है, कभी-कभी उनसे कुछ चिकने-चुपड़े जवाब मिल जाते हैं। पर सुधार नाम-मात्र का ही हो पाता है। मैं अपना प्रयास चालू तो रखूँगा ही।"

ऐसे भ्रष्टाचारों के मामले रेलों में तथा अन्य सरकारी विभागों में सदा चलते रहते हैं। बहुत दफा तो वे छिपाकर नहीं किये जाते। आम लोगों के सामने होते हैं। पर हम पर ऐसी जडता छायी है कि पाप आँखों के सामने होते देखकर भी उसका प्रतिकार करने का प्रयत्न नहीं करते। केवल अपढ़ और अज्ञानी लोगों में ही यह बात नहीं है। खासे समझदार लोग भी आँख मूँद लेते हैं, और शायद यह सोचते होंगे कि अपना काम-काज छोडकर हम दूसरों की झझट में क्यों पडें। यह बात सही है कि विरोध करने के प्रयत्न में कुछ समय देना पडता है, तकलीफ उठानी पडती है और शायद कुछ त्याग भी करना पडता है। पर ऐसा ही 'सयानापन' अगर सब लोग धारण कर लें, तो यह भ्रष्टाचार कैसे कम होगा? ऊपर का पत्र लिखनेवाले भाई की तरह हरएक को

भ्रष्टाचार का प्रतिकार करने के लिए जरूर भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

ज्यो-ज्यों इस विषय मे ज्यादा सोचते हैं, कुछ ऐसा महसूस होने लगा है कि इस काम के लिए एक ऐसा अखबार हो, जो ऐसी घटनाओ को नाम, गॉव, ठॉव-ठिकाने सहित प्रकाशित करे, ताकि दुराचार सार्वजनिक उजाले में आवे, उसे दुरुस्त करने की ओर अधिकारियो का ध्यान खींचा जाय और कुछ कारगर कदम उठाने के लिए अधिकारी मजबूर भी किये जायँ। ऐसा अखबार चलाने में जोखिम तो है ही, पर सत्य की उपासना ठीक रही, तो तकलीफ भोगकर भी आखिर उसका परिणाम अच्छा ही निकलेगा। अखबारो का भी यह कर्तव्य है कि वे इस काम में मदद दें। हम भी उनसे मदद लें।

ता० ८-९-'५१.

नियंत्रण और शुद्ध व्यवहार

रॉची के एक भाई श्री किशोरलालभाई मशरूवाला को लिखते हैं :

"आपने लिखा है कि जो लोग कंट्रोल का विरोध करते हैं, उन्हें भी यह तो मानना ही चाहिए कि कालाबाजार और रिश्वत-खोरी के लिए कंट्रोल के होने का वहाना नहीं लिया जा सकता। नागरिक धर्म और प्रामाणिक जीवन के लिए शुद्ध व्यवहार का और कितनी भी अड़चनो के बावजूद कानून के पालन का पूरा प्रयत्न तो हरएक नागरिक को करना ही चाहिए, यह सचमुच शब्दशः उचित

गाडीवान अपने चावल के बदले में दाल, नमक, तेल, मसाला देहात के बाज़ार मे वापस पहुँचाकर जनता की सेवा करता था। अब गाड़ीवान, क्योंकि उसमें करीब २० मन चावल होता है, सरकारी एजेंट के सिवा किसीको नहीं बेच सकता। उसकी सारी व्यवस्था तहस-नहस हो गयी है। बेचारा गरीब न तो अपनी आवाज कहीं पहुँचा सकता है, न कोई उसकी सुननेवाला है। कुछ प्रतिकार भी होता है, तो हमारे नेता, सरकार और अधिकारी एकदम अनसुनी करते हैं। कुछ लोग इस कानून की अव्यावहारिकता के कारण उसके खिलाफ, सरकारी टैक्सो की रक्षा करते हुए, चावल का व्यापार खुले रूप से करना चाहते है। परंतु यहाँ के कर्मचारी रोड़ा अटकाते हैं, जिससे नाजायज व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है।"

इस पत्र का विषय महत्त्वपूर्ण है। उस पर गंभीरता से विचार करना जरूरी है। पहले तो हम यह सोचें कि सरकार को ऐसे अटपटे नियम क्यों बनाने पड़ते हैं, जिससे लाखो लोगों को तंग होना पड़े ? सरकार जो व्यवस्था करती है, उसे अगर जनता ईमानदारी से निभाने को तैयार हो, तो ऐसे कड़े नियम बनाने की जरूरत ही न रहे। अगर हम उसे विश्वास दिला सकें कि उसकी व्यवस्था ठीक तरह से निभ जायगी, लोग उसमें ईमानदारी से सहयोग देंगे, तो मैं समझता हूँ कि सरकार ऐसे योग्य नियम बना सकेगी, जिनसे लोगो को कम-से-कम तकलीफ हो। हमारा कर्तव्य है कि सरकार को हम ऐसी मदद करते रहे।

जेल में हजारो कैदी रहते हैं और भागने का प्रयत्न कोई एकाध कभी ही करता है, तथापि नियम ऐसे बनाये गये हैं कि भले-बुरे सब कैदियो को तकलीफ भोगनी पड़ती है।

है। लेकिन कानून ही यदि इस तरह का बेढंगा और अव्यावहारिक हो, तो कोई किस प्रकार उसे माने ? सभी को अपनी जीविका उपार्जन करनी है, अपने परिवार के प्रति भी सबका कर्तव्य है। हमने इस क्षेत्र में लगभग दो वर्ष कार्य किया है और हम इस अनुभव पर पहुँचे हैं कि कंट्रोल ही एकमात्र कारण है, देश के लोगों के चरित्र को भ्रष्ट करने का, लोगों को पथ-भ्रष्ट करने का।... दूसरा महायुद्ध छिड़ने के पूर्व इतना अधिक भ्रष्टाचार लोगों में नहीं था। उस समय चीजों का मूल्य भी कम था। किंतु दूसरे महायुद्ध के आरंभ होने के वाद, जब से इस देश में कंट्रोल का जन्म हुआ है, तब से कुछ लोगों ने अनुचित तरीके से, अधिकारियों से मिलकर अत्यधिक धन कमाया है, लेकिन अधिकांश लोग निराधार छोड़ दिये गये। उनके लिए ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गयी, जिसके द्वारा वे कानून का पालन करते हुए अपनी और अपने परिवार की रक्षा के लिए कुछ कमा सकें।

"राँची जिले में 'मॉनोपोली प्रोक्यूरमेंट आर्डर' एवं 'फुड-कंट्रोल-आर्डर' कानून १५ नवम्बर, १९४९ से लागू है। इस कानून के कारण कोई भी आदमी एक मन चावल या डेढ़ मन धान से अधिक सरकारी एजेंट के अलावा दूसरे को नहीं बेच सकता। राँची शहर में भी यह लागू है। यहाँ चावल नहीं होता। पहले लोग टोकरियों में देहात से चावल लाकर फड़ियों (छोटे व्यापारी) के द्वारा गाडीवानो के हाथ बेचा करते थे। गाडीवान आढ़तियों के द्वारा दूकानदारों को बेचते थे और खुदरा दूकानदार हर मुहल्ले में जाकर बेचा करते थे। लोगों को घरबैठे चावल मिल जाता था और देहाती

गाड़ीवान अपने चावल के बदले में दाल, नमक, तेल, मसाला देहात के बाजार में वापस पहुँचाकर जनता की सेवा करता था। अब गाड़ीवान, क्योंकि उसमें करीब २० मन चावल होता है, सरकारी एजेंट के सिवा किसीको नहीं बेच सकता। उसकी सारी व्यवस्था तहस-नहस हो गयी है। बेचारा गरीब न तो अपनी आवाज कहीं पहुँचा सकता है, न कोई उसकी सुननेवाला है। कुछ प्रतिकार भी होता है, तो हमारे नेता, सरकार और अधिकारी एकदम अनसुनी करते हैं। कुछ लोग इस कानून की अव्यावहारिकता के कारण उसके खिलाफ, सरकारी टैक्सों की रक्षा करते हुए, चावल का व्यापार खुले रूप से करना चाहते हैं। परंतु यहाँ के कर्मचारी रोड़ा अटकाते हैं, जिससे नाजायज व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है।"

इस पत्र का विषय महत्त्वपूर्ण है। उस पर गंभीरता से विचार करना जरूरी है। पहले तो हम यह सोचें कि सरकार को ऐसे अटपटे नियम क्यों बनाने पड़ते हैं, जिससे लाखों लोगों को तंग होना पड़े? सरकार जो व्यवस्था करती है, उसे अगर जनता ईमानदारी से निभाने को तैयार हो, तो ऐसे कड़े नियम बनाने की जरूरत ही न रहे। अगर हम उसे विश्वास दिला सकें कि उसकी व्यवस्था ठीक तरह से निभ जायगी, लोग उसमें ईमानदारी से सहयोग देंगे, तो मैं समझता हूँ कि सरकार ऐसे योग्य नियम बना सकेगी, जिनसे लोगों को कम-से-कम तकलीफ हो। हमारा कर्तव्य है कि सरकार को हम ऐसी मदद करते रहें।

जेल में हजारों कैदी रहते हैं और भागने का प्रयत्न कोई एकाध कभी ही करता है, तथापि नियम ऐसे बनाये गये हैं कि भले-बुरे सब कैदियों को तकलीफ भोगनी पड़ती है।

अंग्रेजी सल्तनत ने भारत की आजादी के प्रयत्न को कुचलने के लिए, लोगों को अपमानित करने और जेल भेजने के इरादे से ही पुलिस-चौकियों पर हाजिरी देना आदि दुष्ट नियम बनाकर नये-नये अपराध खडे कर दिये थे। वैसे कानूनों को तोड़ना हमारा धर्म ही था। अब तो हमारी ही सरकार है। उसके और जनता के हित में विरोध नहीं है। सामान्यतः कानून सरकारी दृष्टि से जनता के हित में ही बनाये जाते हैं। इसलिए उन्हें तोड़ने का विचार हम सहसा कदापि नहीं कर सकते। फिर भी ऐसे कई उदाहरण हैं कि मन उद्विग्न हुए बिना नहीं रहता। लेकिन कानून तोड़ने की सलाह नहीं दी जा सकती और हम जानते हैं कि उसका पालन करना भी मुश्किल है। यह समस्या कैसे हल की जाय और उस दशा में, जब कि ऐसे नियम बनाने में ही, सरकार ने गलती की हो? कभी-कभी सरकार अपनी आर्थिक नीति की धुन में गरीबों का खयाल नहीं करती। कभी-कभी सरकारी कर्मचारी व्यवहार न जानने के कारण या स्वार्थी सलाहकारों के बहकावे में गलत नियम बना देते हैं या स्वार्थी कर्मचारी अच्छे नियमों का पालन करने की अवहेलना करते हैं। कभी-कभी सरकार ही ऐसी परिस्थिति खडी कर देती है कि उसका कानून तोडे बिना चारा ही नहीं रहता। पिछले दिनों चने के भाव का नियंत्रण किया गया था। बहुत से लोग कहते हैं कि उसकी जरूरत ही नहीं थी। जरूरत मान भी लें, तो उसी समय चने की दाल का भाव भी नियंत्रित कर देना चाहिए था। पर ऐसा नहीं किया गया। चने का उपयोग प्रायः दाल के रूप में ही होता है और चने से दाल बनाना बिलकुल आसान है। परिणाम यह हुआ कि चना कालेबाजार मे अधिक भाव से बिकता रहा और चने की

दाल खुले बाजार मे उसी ज्यादा भाव के आधार पर बिकती रही। व्यापारियो ने खुले आम, ऊँचे भाव से दाल खरीदी। उस दाल के, व्यापारियो के स्थान पर बेचने के लिए पहुँचते-पहुँचते तो दाल का भाव भी चने के नियंत्रित भाव के आधार पर ही सरकार द्वारा नियंत्रित कर दिया गया। इससे व्यापारियों को अपनी पूँजी का एक तिहाई हिस्सा खोने की नौबत आ गयी। दिवाला निकालने की अपेक्षा उन्होंने बेहतर समझा कि कालेबाजार में दाल बेचकर अपनी इज्जत बचा लें। इसी प्रकार कुछ चीजों के भाव ऐसे मुकर्रर किये गये हैं कि जहाँ वह चीज पैदा होती है और जहाँ उसे सैकड़ों मील किराया आदि खर्च करके बेचने के लिए ले जाना पड़ता है, इन दोनो जगह उनके भाव एक से हैं। सोचिये, ऐसी दशा मे व्यापार कैसे चल सकता है ?

सामान्य लोग मानते हैं कि चीज सस्ती-महँगी बेचना व्यापार का एक मामूली सिलसिला है, माँग के अनुसार भाव कम-ज्यादा होते ही रहते हैं, जहाँ ज्यादा मुनाफा करने की दृष्टि हो, वहाँ तो उसे हम दोष दें, पर व्यापारी के केवल पेट भरने योग्य मुनाफे में दोष क्यों मानें ? लोग यह भी बहस करते हैं कि यह तो केवल नाममात्र का अर्थात कानून का बनाया गुनाह है। वास्तव मे इसमें नैतिक दोष है ही नहीं। हमे यह समझ लेना चाहिए कि ऐसे कानून के पीछे भी समाज-हित की दृष्टि रहती है, इसलिए उन्हे तोडना योग्य नहीं है और ऐसा व्यवहार अशुद्ध है।

फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि ऊपर लिखी हुई समस्या का हल क्या है ? कानून तोड़ने पर भी सजा टालना चाहते है अर्थात् कानून का भंग छिपाना चाहते हैं, यह तो दोष ही है।

क्या अपनी सुविधा के लिए असत्य का पाप करके अपनी नैतिकता भी खो दें ? ऐसी दशा में सलाह तो यही हो सकती है कि अगर कानून तोड़ना ही पड़े तो उसे छिपावें नहीं, उसके लिए जो सजा भुगतनी पड़े, वह सहन करने के लिए तैयार रहें। मामूली आदमी तो यह सलाह नहीं पचा सकेगा। जिसे नैतिकता की विशेष लगन है, वही ऐसा कदम उठा सकेगा। उसके इस कदम का सरकारी कर्मचारियों पर यह असर होना सम्भव है कि उन्हें अपने अयोग्य नियम रद्द करने पड़ें। शुद्ध व्यवहार आन्दोलन के सिलसिले में जो कई पेचीदा प्रश्न खड़े होते हैं, उनमें ऐसा दीखता है कि अन्त में सत्याग्रह का आसरा लेना पड़े। सत्याग्रह करने की योग्यता किसकी मानें, किस विषय को लेकर करें, आदि प्रश्न अलग हैं। जो कोई ऐसा विचार करेगा, वह इसके जानकारों से भी सलाह कर लेगा। परन्तु नैतिकता बचाने की दृष्टि से यह आवश्यक दीखता है कि जिन्हें अशुद्धता चुभती है, उनको कानून तोड़ना ही पड़े, तो वे उसको प्रकट करके उसका प्रायश्चित्त करें।

इस पर श्री किशोरलालभाई ने यह टिप्पणी दी—

"श्री जाजूजी ने सत्याग्रह की संभावना का इशारा किया है और उसके लिए आवश्यक पूर्व शर्तें भी बतायी हैं। यह याद रखना चाहिए कि शुद्ध व्यवहार आन्दोलन उसकी एक जरूरी पूर्व-शर्त है। सत्याग्रही की प्रखर प्रामाणिकता और ध्येय की पवित्रता, दोनो के बल पर ही सफल सत्याग्रह चल सकता है। सत्याग्रह की कोटि का कोई कदम उठाया जाय, उसके पहले अपनी शिकायतो का निवारण कानूनी उपायों द्वारा करने की पूरी कोशिश करना जरूरी होगा। शिकायतों के निवारण की मॉग तभी सफल हो सकती है, जब कि

ह ऐसे लोगों द्वारा पेश की गयी हो, जिनके चरित्र की समाज में
ाख है और जिनके बारे में यह विश्वास के साथ कहा जा सकता
 कि वे प्रामाणिक हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि जो लोग
ामाणिक जीवन जीना चाहते हैं, वे अपने स्थानीय मंडल बनायें,
ोज के जीवन में एक-दूसरे की मदद करें और एक-दूसरे की धर्म-
ुद्धि जाग्रत रखने में सहायता करें।"

ता० २२-९-'५१.

सजा से बचने के लिए रिश्वत

बम्बई के एक भाई लिखते हैं :

"मैं अपने एक मित्र से शुद्ध व्यवहार-मंडल में शामिल होने के लिए आग्रह कर रहा हूँ। उन्होंने नीचे लिखे दो किस्से बताकर मार्ग-दर्शन माँगा है :

(क) एक बार बोरीबंदर रेल्वे स्टेशन पर गाड़ी पकड़ने के लिए मुझे रेल्वे लाइन लाँघनी पड़ी। पुलिस ने पकड़ा। इसमें रेल्वे-कानून का भंग तो था ही, पर ऐसे वक्त मैं उसे एक रुपया दूँ तो छूट जाऊँ, नहीं तो दोपहर तक पुलिस-स्टेशन पर बैठकर बाद में मैजि-स्ट्रेट के सामने पाँच-दस रुपयों का दण्ड देना पड़े। बेहतर यह है कि एकाध रुपया देकर छूट जाऊँ।

(ख) शहरों मे पेशाबघर बहुत थोड़े होते हैं, लोग बार-बार गलियों में बैठ जाते हैं। एक बार मेरे लिए भी ऐसा मौका आया। पुलिस ने पकड़ा, मैं दो रुपये देकर छूटा। अगर कुछ नहीं देता, तो चौकी पर जाना पड़ता, जमानत देनी पड़ती और बाद में कोर्ट में दण्ड भुगतना पड़ता। व्यवहार में शुद्धि रखना अच्छा तो है, पर ऐसे संकट के समय अपना काम न निकालूँ, तो बड़ी अड़चन होती है।"

क्या अपनी सुविधा के लिए असत्य का पाप करके अपनी नैतिकता भी खो दें ? ऐसी दशा में सलाह तो यही हो सकती है कि अगर कानून तोड़ना ही पड़े तो उसे छिपावें नहीं, उसके लिए जो सजा भुगतनी पडे, वह सहन करने के लिए तैयार रहे । मामूली आदमी तो यह सलाह नहीं पचा सकेगा । जिसे नैतिकता की विशेष लगन है, वही ऐसा कदम उठा सकेगा । उसके इस कदम का सरकारी कर्मचारियों पर यह असर होना सम्भव है कि उन्हें अपने अयोग्य नियम रद्द करने पड़ें । शुद्ध व्यवहार आन्दोलन के सिलसिले मे जो कई पेचीदा प्रश्न खड़े होते हैं, उनमें ऐसा दीखता है कि अन्त में सत्याग्रह का आसरा लेना पड़े । सत्याग्रह करने की योग्यता किसकी मानें, किस विषय को लेकर करें, आदि प्रश्न अलग हैं। जो कोई ऐसा विचार करेगा, वह इसके जानकारो से भी सलाह कर लेगा । परन्तु नैतिकता वचाने की दृष्टि से यह आवश्यक दीखता है कि जिन्हे अशुद्धता चुभती है, उनको कानून तोडना ही पडे, तो वे उसको प्रकट करके उसका प्रायश्चित्त करें ।

इस पर श्री किशोरलालभाई ने यह टिप्पणी दी—

"श्री जाजूजी ने सत्याग्रह की संभावना का इशारा किया है और उसके लिए आवश्यक पूर्व शर्ते भी बतायी हैं। यह याद रखना चाहिए कि शुद्ध व्यवहार आन्दोलन उसकी एक जरूरी पूर्व-शर्त है । सत्याग्रही की प्रखर प्रामाणिकता और ध्येय की पवित्रता, दोनो के वल पर ही सफल सत्याग्रह चल सकता है । सत्याग्रह की कोटि का कोई कदम उठाया जाय, उसके पहले अपनी शिकायतों का निवारण कानूनी उपायों द्वारा करने की पूरी कोशिश करना जरूरी होगा । शिकायतों के निवारण की मॉग तभी सफल हो सकती है, जव कि

हमारे प्रकाशन

(विनोबा)

त्रिवेणी ॥)
विनोबा प्रवचन ॥।)
भगवान् के दरबार मे =)
साहित्यिकों से ॥)
भूदान-यज्ञ (नवजीवन) १।)

(धीरेन्द्र मजूमदार)

शासन-मुक्त समाज की ओर ।=)
युग की महान् चुनौती ।)
नयी तालीम ॥)
ग्रामराज ।-)

(श्रीकृष्णदास जाजू)

सपत्तिदान-यज्ञ ।)
व्यवहार-शुद्धि ।=)
चरखे की तात्त्विक मीमासा (हिं० अ०) १)

(जे० सी० कुमारप्पा)

गॉव आन्दोलन क्यों ? ३॥)
गाधी-अर्थ-विचार १)
स्थायी समाज-व्यवस्था (भाग २ रा) २)
श्रम मीमासा और अन्य प्रबन्ध ॥।)
यूरोप : गाधीवादी दृष्टि से ॥।)

(दादा धर्माधिकारी)

मानवीय क्रान्ति ।)
साम्ययोग की राह पर ।)
क्रान्ति का अगला कदम ।)

(जयप्रकाश नारायण)

अहिंसक क्रान्ति का सन्देश -)॥

(अन्य लेखक)

सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र ।)
श्रम-दान ।)
विनोबा के साथ १)
पावन-प्रसग ।=)
भूदान-आरोहण ॥)
राज्य-व्यवस्था सर्वोदय दृष्टि से १॥)
गो-सेवा की विचारधारा ।=)
भूदान-यज्ञ १)
सामाजिक क्रान्ति और भूदान (प्रेस मे)
महात्मा गाधी ।=)
सत विनोबा की उत्तर भारत यात्रा १।)
भूदान दीपिका =)
साम्ययोग का रेखाचित्र =)
पूर्व बुनियादी तालीम १)
सामूहिक प्रार्थना ।)
धरती के गीत -)

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन

राजघाट, काशी (उ० प्र०) :: मगनवाड़ी, वर्धा (म० प्र०)